॥ ओ३म् ॥

वैदिक गर्जना (वैदिक सेवा आश्रम)

आयुर्वेद-चिकित्सा-परिचय

विशेषांक

लेखक

पं० धर्मदेव 'मनीषी'

स्नातक – गुरुकुल झज्जर [रोहतक]

प्रकाशक

महाराष्ट्र आर्य प्रतिनिधि सभा

वैदिक सेवा आश्रम : वाजेगाव

नांदेड : ४३१६०२

संपादन सहयोग :
डॉ. सुभाष कंधारकर, डॉ. सुग्रीव काळे
प्रा. देवदत्त तुंगार, प्रा. भूदेव विद्यालंकार

वर्ष : १४ / अंक १–४
प्रथम संस्करण
प्रति : ५००
मूल्य : ५ /--

मुद्रण सहयोग :
श्री सखाराम आर्य

मंगलवार १५ अक्टुबर १९८५
आश्विन शुक्ल २
विक्रम संवत् २०४२
दयानंदाब्द : १६०
सृष्टि संवत् : १,९६.०८,५३,०८५

मेरे पूज्य पिता

श्री शंकरराव पंढरीनाथ जी सराफ

एवं

स्नेहमयी माता

श्रीमती रत्नाबाई शंकरराव जी सराफ

जिनके आशीर्वाद से मैं इस योग्य बन सका हूँ,

उनके

श्री चरणों में सादर समर्पित

'मनीषी'

नाम : धर्मदेव 'मनीषी'

जन्म सन् : १९४९ ई०

जन्म स्थान : उदगीर (जि. लातूर) – महाराष्ट्र

स्नातक : गुरुकुल झज्जर

शिक्षा : व्याकरणाचार्य, निरुक्ताचार्य, दर्शनाचार्य
राजशास्त्राचार्य, वेदाचार्य

प्राध्यापक : गुरुकुल कालवा महाविद्यालय
जींद (हरियाणा)

रचनाएँ : 'प्राचीन राजनीति' दर्शन आदि
विविध पुस्तकों के लेखक

सम्पादकीयम्

– प्रा० सत्यकाम पाठक

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यंमूलमुत्तमम्' मनुष्य जीवन को सफल बनाने का धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का मूल साधन आरोग्य ही है। कारण कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्' स्वस्थ शरीर से ही धर्मादि का अर्जन करना संभव है। भोग-विलास एवं ऐय्याशी में फंसा आज का मानव रोगों से त्रस्त है, दुखी है। चारों तरफ मृत्यु-भय की छाया सतत मंडरा रही है. डाक्टर और वैद्य छाया की तरह मानव का पीछा कर रहे है। चाट-पकोडी जैसे चटपटे पदार्थ उडाने वाला आज का मानव, समाज को क्या दे सकेगा ? आज राष्ट्र में बच्चे से लेकर बूढे तक सभी लगभग किसी न किसी रोग से पीडित हैं। जिन पर राष्ट्र को अभिमान था। जो राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्रीय विकास के लिए कुछ कर सकते थे वे भी आज फैशन की आंधी मे बहकर, अश्लील साहित्य पढकर घुटघुटकर दम तोडने वाली पतली हड्डियां लिए हुए हैं। राष्ट्र मन्दिर के निर्माण में वे क्या सहयोग दे सकेंगे ?

तब भी निराश होना नही है। ऐसे समय में भी चंद व्यक्तियों को ही समाज कार्य में उतरकर पुनःस्वास्थ्य की उपासना करने के लिए मानव मात्र को प्रवृत्त कराना होगा। उन्हें बताना होगा कि हमारी प्राचीन एवं वैदिक चिकित्सा-पद्धति क्या है ? किस प्रकार आहार-विहार का सेवन करते हुए व सुव्य-

वस्थित दिनचर्या का पालन करते हुए मानव इहलौकिक जीवन सफल कर सकता है।

इसी दृष्टि कोण को समाने रखकर हमने अपने पाठकों के सामने आयुर्वेद चिकित्सा से परिचित कराने के लिए पं. धर्मदेव जी 'मनीषी' द्वारा लिखित आयुर्वेद चिकित्सा परिचय अंक रखने का प्रयास किया।

प्रस्तुत अंक में लेखक ने सर्व सामान्य व्यक्तियों को आयु-र्वेद चिकित्सा समझ में आवे, इसी दृष्टि से संक्षिप्त व सारगर्भित विषय का प्रतिपादन किया है। शीर्षक भी छोटे-छोटे एवं अत्या-वश्यक वस्तुओं को लेकर दिए हैं। आयुर्वेद की महत्ता, ऋतुओं का प्रभाव, नाडी दर्शन इत्यादि विविध विषयों को लेकर बहुत अच्छी तरह समझाया है। आज मांसाहार का बाजार गरम है। लेखक ने इस विषय को लेकर भी मांसाहार स्वास्थ्य के दृष्टि से कैसे अहितकर है लिखा है। प्रतिदिन प्रयोग में आनेवाले जैसे हल्दी, धनियां, पोदीना, नीबू नीम. तुलसी, शहद इत्यादि पदार्थों के गुण-धर्म बताकर चिकित्सात्मक प्रयोग दर्शाए हैं। दांत के दृष्टि से दातौन करना सर्वोत्तम है, किन्तु अब यह दुःसाध्य होने से,पाठकों के सामने आयुर्वेदिक दंत मंजन के ६-७ योग दिये है। 'स्वास्थ्य रक्षा की बीस बाते लिखकर भी लेखक ने आगे विविध रोगों पर विविध रोग नाशक उपाय बताए हैं। सबसे महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय यह है कि स्वामी दयानंदजी द्वारा राजारावतेजसिंह को लिखे चौंतीस औषध के योग संग्रहीत किये हुए है। पाठक वर्ग इसका भी 'आप्त वचनं प्रमाणम्' मानकर यथासमय अनुभव लेकर अनुभव से सूचित कराएं।

श्रावणी पर्व स्वाध्याय का पर्व है। इस अवसर पर वैदिक गर्जना का यह वैदिक प्रकाशन कराना आवश्यक समझा। आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक आयुर्वेद के संदर्भ में लोगों की रुचि बढायेगी।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभागभवेत्॥

– नेताजी सुभाषचन्द्र बोस महाविद्यालय
नांदेड : ४३१६०१

स्वामी अग्निदेव "भीष्म" चतुर्वेदी

संस्थापक – वैदिक योग आश्रम / हिसार हरयाणा

सम्मति

आदरणीय पण्डित धर्मदेव जी 'मनीषी' ने आयुर्वेद का अध्ययन करके जो संग्रह किया है वह उपकार के लिये किया है। क्योंकि वे धन, मान, घमण्ड से बहुत दूर हैं। वे सच्चे सन्त हैं। जब हमारे पास आते हैं तो हमारा उनके आगे शिर झुकता है। इनका ऊंचा व्यवहार है। इनकी पुस्तक को जो पढ़ेगा वह अपने शरीर, मन, बुद्धि को ठीक रखेगा।

–o–

वैद्य आचार्य ब्रह्मदत्त पाठक
'पाठक निवास' खडकेश्वर
औरंगाबाद : ४३१००१

सम्मति

'आयुर्वेद-चिकित्सा-परिचय' के मनीषी विद्वान् श्री धर्मदेव जी जिन्होंने सूक्ष्मता से आयुर्वेदीय ग्रन्थ समवाय का विलोडन किया. इस कृति में दीर्घ जीवनोपयोगी, अनायास सिद्ध होने वाले. मौलिक तत्त्वों का मिश्रण दृग्गोचर होता है। सरलता पूर्वक अपनाये जाने-वाले सर्वविदित वनस्पतियों से संपृक्त योगों का मिश्रण और औष-धियां भी नितरां जनसामान्य तक को लाभदायी ठहरेगी।

आहार विहार में होने वाली त्रुटियां ही रोगों की जननी है। उसी का वास्तविक चित्रण मान्यवर लेखक ने किया हैं। वस्तुतः आपका जीवन एक तपस्वी की तरह मंजा हुआ है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली से पढे हुए आप चिंतनशील लेखक है। मैं अपने बाल्य काल से ही आपको जनता हूँ।

आशा करता हूं सत्प्रयास-जनित सारगर्भित ये चिंतन कण सर्वथा पीडित मानव जाति के लिए लाभप्रद सिद्ध होंगे।

स्वामी गोरक्षानन्द सरस्वती
अध्यक्ष – श्री गोशाला बाबा फूलू साध
उचाना खुर्द (जीन्द) हरयाणा

सम्मति

पं० धर्मदेव " मनीषी " हमारी संस्थामें में पांच छः वर्षों से आते जाते है। इनके द्वारा संग्रहीत " आयुर्वेद चिकित्सा परिचय " के लेखों को देखकर प्रसन्नता हुई। पण्डित जी का जीवन तप स्वाध्याय और ईश्वर उपासना में सक्रिय है। जैसे योग दर्शन में कहा है – " तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः " अर्थात् तप में बहुत चमक है। जैसे कोयले का हीरा एक करोड वर्ष तपने के बाद उसको जोहरी लोग रत्न कहते हैं। दूसरा स्वाध्यायान्मा प्रगदः स्वाध्याय से आलस्य मत कर। स्वाध्याय से मन मे मन में नई रोशनी उत्पन्न होती है। तीसरा - ईश्वर प्रणिधान-जब मनुष्य अपने आपको ईश्वर के समर्पित कर देता है तब उसके सारे काम सफल हो जाते हैं। ये तीनों काम मैंने पं. धर्मदेव 'मनीषी में देखे है। आर्य समाज के निष्ठावान् कार्यकर्ता है। आर्य समाज का उपदेश इनकी दिनचर्या है। इनमें सरलता सादगी और शीलता है।

विषय सूचि

—०—

प्राक्कथन

मनुष्य योनि सर्वश्रेष्ठ कहलाती है। इसका शरीर हृदय और मस्तिष्क परम पिता परमात्मा की अनोखी देन है। स्वास्थ्य पर हमारा जीवन निर्भर है और स्वास्थ्य अधिकांश उस भोजन पर है जो नित्य अपने पेट में डालते हैं. अतः भोजन की ओर अत्याधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

यहां "आयुर्वेद चिकित्सा परिचय" संग्रह में चरक सुश्रुत आदि आयुर्वेदिक ग्रन्थों से ऋषि मुनि आचार्यों के प्रमाणों सहित अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर सारा प्रतिपादन करके कुछ प्रतिदिन प्रयोग में आने वाले उपयोग खाद्य पदार्थों के गुण दोष वर्णन किये हैं तथा महर्षि दयानन्द जी महाराज के अनुभूत योगों के साथ अन्य ओषधियों का भी वर्णन किया है. आशा है सज्जनवृन्द लाभ उठायेंगे.

यह संग्रह पूज्या माता रत्नाबाई जी तथा पूज्य पिता शंकर राव जी उदगीर महाराष्ट्र निवासी के चरणों में सादर समर्पित करता हूँ। अन्त में –

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

पं० धर्मदेव "मनीषी"

सहाय्यक – आचार्य गुरुकुल कालवा (जीन्द)

आयुर्वेद की महत्ता

आयुर्वेद के सम्बन्ध में सहस्त्रों वर्ष पूर्व ऋषि मुनियों ने लिखा हैं. " शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग या मेल को आयु आर्थात् उम्र कहते है । " और जिस शास्त्र से आयु का ज्ञान उसकी प्राप्ति होती है उसे " आयुर्वेद ' कहते हैं। कहा भी गया है :-

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा ।
विद्यते यत्र विद्वभ्दिः स आयुर्वेद उच्यते ।।

जिसमें आयु का हित, अहित, रोग का निदान और शमन हो उसको विद्वान् आयुर्वेद कहते हैं। मुनिचरकानुसार :-

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानंच तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ।।

अर्थात् जिससे आयु के हिताहित का ज्ञ.न और उसका परिणाम मालूम हो उसे "आयुर्वेद" कहते हैं। इतना ही नहीं सहस्त्रों वर्ष पूर्व हमारे महर्षियों ने यहां तक लिखा है कि –

" स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकार
प्रशमनं च इति आयुर्वेदस्य प्रयोजनम् "

अर्थात् आयुर्वेद का यह प्रयोजन ही है कि रोगों से पीडित मानवो का रोग नाश करना और स्वस्थ्य की रक्षा करना । अत–

एवं जो मानव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों का अभिलाषी होवे,वह आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान से चिकित्सा संपन्न करावे। साथ ही उसे इसे पढना, समझना और सीखना चाहिये क्योंकि आयुर्वेद ही विश्व में ऐसा चिकित्सा विज्ञान है कि जिसके अन्तर्गत चिकित्सा योग्य आवश्यक वस्तुयें विद्यमान हैं। यथा – १ कायचिकित्सा, २ शल्यतन्त्र. ३ शालाक्य, ४ कौमारभृत्य, ५ अगदतन्त्र, ६ भूतविद्या ७ रसायनतन्त्र, ८ वाजीकरण।

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने आयुर्वेद की महत्ता क्या ही सुन्दर शब्दों में लिखी है –

उस वैद्य विद्या के विषय में अधिक कहना व्यर्थ है,
सुश्रुत चरक रहते हुये सन्देह करना व्यर्थ है।
अनुवाद कर्त्ता आज भी उपहार उनके पा रहे,
है आर्य आयुर्वेद के सब देश सद्गुण गा रहे ॥ १ ॥

हैं आजकल को डाक्टरी जिससे महा महिमामयी
वह आसुरी नामक चिकित्सा है यहीं से ली गई
नाड़ी–नियम–युत रोग के निश्चित निदान हुये यहां
सब औषधों के गुण समझकर रस विधान हुये यहां ॥ २ ॥
थे हार जाते अन्य देशी वैद्यवर जिस रोग से
हम भस्म करते थे उसे बस भस्म के ही योग से।
थे दूर देशों के नृपति हमको बुलाकर मानते
इतिहास साक्षी है हमें सब थे जगद् गुरु मानते ॥ ३ ॥

इस प्रकार जो इतिहास को न भी माने तो तथ्य के रुप में स्वीकार करना ही होगा कि चिकित्सा योग्य समस्त विशेषतायें इस आयुर्वेद में ही विद्यमान है।

–०–

शरीर का सच्चा मित्र

प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है। स्वास्थ्य ही मनुष्य जीवन का सर्वोपरि अंग हैं। जीवित रहकर भी अस्वस्थ मनुष्य मुर्दा होता हैं। छोटी-छोटी भूलों से स्वस्थ्यनष्ट होकर आयु पथ कम होता हैं और थोडी-थोडी सावधानियों से स्वास्थ्य ठीक रहकर आयुस्थापन होता हैं। वही स्वास्थ्य रक्षण की एक राम बाण कुंजी है। एक लोक प्रिय वैदिक प्रार्थना स्मरण आती है -

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतम-दीनाःस्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।

हे सबके चक्षु! आप अनादिकाल से विद्वानों और संसार के हितार्थ शुद्ध वर्तमान हैं। प्रभो हम आपका ज्ञान सौ वर्ष व्याख्यान करें। सौ वर्ष की आयुभर पराधीन न हों और यदि योगाभ्यास से सौ वर्ष से अधिक आयु हो इस प्रकार विचार करें।

शत या इससे अधिक वर्ष की आयु पाकर स्वस्थ्य जीवन यापन करने की कल्पना हमारे पूर्वज मनीषियों की तभी सार्थक सिद्ध हो सकती है। जब हम अपने शरीर से सभी अंग प्रत्यंगों को पूर्णतः सुरक्षित रखते हुये उनसे ठीक-ठीक काम लें। और उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण करें। हमारे शरीर का सबसे अधिक महत्त्व पूर्ण अंग मन है। उसके दुःखी होने पर शरीर दुःखी और उसके

सुखी रहने पर शरीर सुखी रहता हैं। चिन्ता एक ऐसा मनोविकार है जो हमारे शरीर को शनैः शनैः खाता रहता है। चाहे अमीर हो या गरीब, छोटा हो या बडा चिन्ता किसी को क्षमा नहीं करती। विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होने की चिन्ता में ग्रस्त रहता है। और यही कारण है कि परीक्षा निकट आई नहीं कि विद्यार्थियों के चेहरों पर पीलापन छा जाता है। चिन्ता स्वास्थ्य का सबसे बडा शत्रु है। एक कहावत है कि – थोडी सी भी चिंता मनुष्य को मार डालने के लिये काफी है। इस चिन्ता रूपी शरीर के दुश्मन से सदैव साव-धान रहना चाहिये और इससे छुटकारा मन की दृढता से ही मिल सकता है।

दूसरा मनोविकार जो हमारे शरीर को फूटी आंख भी नही देख सकता है वह है क्रोध क्रो. हमारे रक्त में विष को जन्म देता है. एक डाक्टरने एक परीक्षण किया कि क्रोधी मनुष्य का खून पिचकारी द्वारा छोटे–छोटे जन्तुओं के शरीर में पहुचाया और उसने देखा कि खून के प्रवेश होते ही वे तुरन्त मर गये।

प्रायः देखा जाता है अधिकांश भारतीय बन्धु भोजन करते समय विशेष क्रोध करते हैं। वे वास्तव में क्रोध करके अपने भोजन में विष का मिश्रण कर देते हैं। हैं। यही कारण है कि अच्छा से अच्छा भोजन करने वाला व्यक्ति भी दुर्बल रहता है। इसी प्रकार काम, मोह लोभ, भय, मत्सर आदि मनोविकार भी शरीर के शत्रु हैं जो हमारे शरीर के रक्त को दूषित कर देते हैं। इसी–लिये विद्वानों ने इनसे सदैव दूर रहने का परमर्श दिया है।

शरीर का सच्चा मित्र :– जिस प्रकार भय, चिन्ता, क्रोध काम, मत्सर आदि मनोविकार शरीर के शत्रु हैं उसी प्रकार मानव देह का एक सच्चा मित्र भी है और वह हैं हँसना। अस्तु, मनुष्य को

कठिन से कठिन मुसीबत में भी प्रसन्न रहना चाहिये। प्रसन्न रहना और हंसना शरीर के लिये एक महान् औषधि है।

अनेक वैद्यों नें हंसा हंसाकर रोगियों को ठीक किया है। इस संबन्ध में एक कहावत भी प्रचलित हैं – "हंसो और मोटे बनो" निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि शरीर का सच्चा मित्र हंसना हंसाना हैं। इसलिये बडी से बडी मुसीबत में भी जो व्यक्ति मुस्कारता रहता हैं, उसकी मुसीबत अतिशीघ्र टल जाती हैं। अस्तु, हर हालत में प्रसन्न रहना चाहिये।

—०—

स्वास्थ्य रक्षा की बीस बातें

१, ब्राह्म मुहूर्त में उठने से शरीर में स्फूर्ति कान्ति और तेज की वृद्धि होती है ।

२, रात्रि को ताम्र पात्र में रखा बासा जल यदि नाक द्वारा पीया जाय तो नेत्रों की ज्योति स्थिर होगी ।

३, शौच जाते समय मुंह न खोलिये अन्यथा दुर्गन्ध के कीटाणु मुख मार्ग से श्वास नलिका द्वारा शरीर में प्रविष्ट होकर रोग उत्पन्न करेंगे ।

४, मुख की सफाई प्रातः सायं खूब अच्छी तरह करनी चाहिये । तीनों तरफ से दांत, जीभ, तालु जीभ के नीचे का भाग, गला अच्छी तरह साफ करना चाहिये । वृक्ष की दातुन सर्व श्रेष्ठ उपाय है । कोई बढिया मंजन भी अच्छा है । सरसों का तैल दांतों पर मलते रहना उपयोगी हैं । ब्रुश से दांतों को हानि होती हैं । भोजन के बाद दांतो की सफाई कीजिये । इससे दांत बुढ़ापे तक बने रहेगे ।

५, मुंह मे पानी भरकर आंखों पर ठण्डे पानी के छपके दिन में तीन बार देने से आंखों के रोग नहीं रहते. ।

६, यथा संभव ठण्डे जल से ही स्नान कीजिये । स्नान करते समय पहले सिर भिगोना चाहिये पांव नहीं इससे शरीर में फूर्ति और कार्य क्षमता बढती है रक्त का शरीर में भली प्रकार अभिसरण होता हैं ।

७, भोजन के समय जल न पीये तो अच्छा हैं। आधे घण्टे बाद पीना स्वास्थ्यप्रद हैं। यदि बिना पीये न रहा जाय तो केवल एक ही बार मध्य मे पीये वह भी कम मात्रा में।

८, दूध के साथ नमकीन पदार्थ, मूली के साथ दूध, खरबूजा के बाद दूध सेवन न करें। ये विष बनकर शरीर को नष्ट कर सकते हैं।

९. भोजन करने के बाद थोडा विश्राम अवश्य करना चाहिये। कुछ देर बांयी करवट लेटना उचित है सो जाना हानिकर होगा।

१२, भोजन के तुरन्त बाद पढना लिखना या श्रम करना रोग उत्पन्न करता हैं। आधा घण्टे के बाद ही काम में लगना चाहिये।

११, दिन छिपते समय पढने-लिखने से आंखों की ज्योति निर्मूल हो जाती हैं/ इसी प्रकार चलती हुई तेज सवारियों में पढना भी बुरा हैं।

१२, मादक द्रव्य मनुष्य के शत्रु हैं शराब, गांजा, चरस, भंग, अफीम, चाय, काफी, आदि पदार्थ स्वास्थ्य के शत्रु हैं। रोगों को उत्पन्न करके आयुष्य का नाश करते हैं।

१३, गैर की शिकायत वालो को भोजन के पूर्व लवण युक्त अद्रक या नींबू का रस लेकर भोजन आरम्भ करना चाहिये।

१४, खडे होकर पानी न पीये। इससे पेट और पावों की अनेक बीमारियां होती हैं। आडे-टेढे बैठकर भी जल-पान हानिकारक हैं। सीधे स्वस्थ बैंठकर पानी पीना चाहिये।

१५, जब प्यास लगे तब जल पीओ और भूख लगे तब भोजन

करो। भूख में पानी और प्यास में भोजन स्वास्थ्य को हानि पहुं-चाता है।

१६, शरीर के वेगों को रोकने से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है। इसलिये भूख, प्यास, शौच, पेशाब, पाद, छींक, जम्हाई, अंगड़ाई, आदि वेगों को रोकना ठीक नहीं है।

१७. शुद्ध दूध अत्यन्त बलप्रद होता है स्वास्थ्य की रक्षा के लिये दूध का सेवन परमावश्यक है। दूध अति शुद्ध होना जरूरी है। दूध में अशुद्ध अंगुली डालने से वह विष बन जाता है।

१८, दीर्घायु और स्वास्थ्य की कामना वाले लोगों को (यथा रक्तचाप आदि की शिकायत वाले व्यक्तियों को) प्रातः काल सूर्योदय के समय गांव से दूर जंगल में टहलने जाना चाहिये। उदित सूर्य की जीवनदायिनी किरणों के प्रकाश में बैठकर जीवनीशक्ति प्राप्त करनी चाहिये।

१९, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति और उम्र के अनुसार नित्य उपयोगी व्यायाम करना चाहिये। नवम्बर से मार्च तक अधिक और उसके बाद कम मात्रा में व्यायाम उपयोगी है। ग्रीष्म तथा वर्षा में व्यायाम बहुत ही हल्का करना चाहिये। व्यायाम से शरीर हृष्ट पुष्ट, दृढ सहनशील और रोगों से जूझने की क्षमता युक्त हो जाते हैं। स्मरण रहे शक्ति से अधिक व्यायाम रोगोत्पादक और घातक बन जाता है।

२०, रात्रि जागरण रोगोत्पादक तथा आयुनाशक है। अतः समय पर सोकर समय पर उठ जाना चाहिये।

—०—

ऋतुओं का प्रभाव

जो पुरुष यह जानता है कि किस ऋतु में कैसा आहार-विहार करना चाहिये उसे ही आहार का फल प्राप्त होता है, यदि वह यह नहीं जानता कि किस ऋतु में कौनसा अन्न खाना चाहिये, तो मात्रा पूर्वक आहार करने पर भी उसे आहार का फल प्राप्त नहीं हो सकता। ऋतुओं के विभाग के अनुसार संवत्सर (वर्ष) के छः ऋतु ये बनाई गई हैं इनमें से शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म इन तीन ऋतुओं में सूर्य उत्तर दिशा में गमन करता है अतः इन्हे 'उत्तरायण' अथवा 'आदान काल' तथा वर्षा शरद और हेमन्त ऋतुओं में सूर्य दक्षिण दिशा में गमन करता है अतः इन्हें दक्षिणायन अथवा विसर्ग काल जानना चाहिये। विसर्गकाल में वायु अत्यन्त रुक्ष नहीं बहती किन्तु आदान काल में अतिरुक्ष बहती है। विसर्ग काल में चन्द्रमा पूर्ण बली रहता है और समस्त भूमण्डल पर अपनी किरण फैलाकर विश्व को निरन्तर आप्यायित (तृप्त) करता रहता है इसलिये विसर्गकाल को सौम्य कहा जाता है। आदान काल को आग्नेय कहा है, सूर्य वायु और चन्द्रमा काल स्वभाव से मार्ग का ग्रहण कर (मेषादि राशियों पर जाकर) काल ऋतु रस दोष और देह बल की उत्पत्ति में कारण होते हैं ऐसा समझना चाहिये।

आदान काल में सूर्य अपनी किरणों द्वारा संसार के स्नेह भाग (जलीयांश) को लेता है तथा वायु तीव्र और रुक्ष होकर संसार के स्नेह भाग का शोषण करता है परिणाम स्वरूप शिशिर वसन्त और ग्रीष्म इन तीन ऋतुओं में यथाक्रम रुक्षता उत्पन्न हो

जाने तथा रुक्ष रस तिक्त, कषाय और कटु रसों की वृद्धि हो जाने से मनुष्यों के शरीर में दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है। वर्षा, शरद् तथा हेमन्त इन ऋतुओं में क्रमशः जब सूर्य दक्षिण दिशा की ओर गमन करना आरम्भ करता है उस समकाल और स्वाभाविक मार्ग (विसर्ग काल एवं दक्षिणायन) तथा मेघ, वायु और वर्षा से उसका तेज कम हो जाता है, चन्द्रमा पूर्ण बली रहता है, तथा आकाश से जल गिरने के कारण जगत् का ताप शान्त हो जाता है अतः अम्ल, लवण और मधुर ये अरुक्ष (स्निग्ध रस तथा मनुष्यों के शरीर में बल यथाक्रम प्रतिदिन बढ़ने लगता है।

विसर्ग काल के आदि (वर्षा ऋतु–श्रावण, भाद्रपद) और आदानकाल के अन्त (ग्रीष्म ऋतु–ज्येष्ठ–आषाढ) में दुर्बलता, विसर्गकाल मध्य (शरद् ऋतु–आश्विन, कार्तिक) और आदान–काल के मध्य (वसन्त ऋतु–चैत्र, वैशाख) में मध्यम बल तथा विसर्गकाल की अन्त (हेमन्त ऋतु–अगहन, पौष) और आदान काल के आदि (शिशिर ऋतु–माघ, फाल्गुन) में श्रेष्ठ बल रहता है।

– ० –

षड् ऋतु चर्या

१, हेमन्त ऋतुचर्या–हेमन्त ऋतु में शीतलता अधिक रहती हैं अतः शीतल वायु के स्पर्श से आभ्यन्तर अग्नि के रुक जाने के कारण बलवान् [स्वस्थ] पुरुषों के शरीर में जठराग्नि बलवान् होकर मात्रा और द्रव्य में गुरु आहार को पचाने में समर्थ रहती है। इस प्रकार अग्नि के प्रबल होनें पर जब उसके बल के अनुसार इन्धन [गुरु आहार] नहीं मिलता तब अग्नि शरीर में उत्पन्न धातु [रस] को जला डालती हैं अतः शीतल वायु का प्रकोप हो जाता हैं। हेमन्त ऋतु में दूध के विकारमात्र(दही, मलाई, रबडी छांछ आदि) ईख के विकार (गुड़, राब, चीनी, मिश्री आदि) तेल, नये चावलों का भात और गरम जल का सेवन करने से आयु की हानि [रोगोत्पत्ति]नहीं होती। हेमन्त ऋतु में बात का कोप रहता हैं तथा वातावरण शीतल रहता हैं अतः शीत से बचनें का पूरा प्रयत्न करना चाहिये। शीतकाल आ जाने पर वातवर्धक एवं लघु अन्नपान प्रवात (तीव्र वायु) प्रमिताहार [थोडा नपा तुला भोजन) और जल में घुले सत्तू का सेवन नहीं करना चाहिये।

२, शिशिर ऋतुचर्या :– सामान्य रूप से हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतुयें यद्यपि समान होती हैं किन्तु शिशिर में कुछ अलग विशषता होती है। आदान काल होने से शिशिर ऋतु में रूक्षता आ जाती है तथा मेघ वायु और वर्षा के कारण विशेष शीत पडने लगती हैं अतः शिशिर ऋतु में भी हेमन्त ऋतु को तरह सब विधियों का पालना करना चाहिये। विशेष रूप से निवात (वायु

रहित) तथा उष्ण गृह में निवास करना चाहिये। शिशिर ऋतु में कटु-तिक्त-कषाय रस तथा वातवर्धक हल्के और शीतल अन्नपान का त्याग कर देना चाहिये।

३, वसन्त ऋतुचर्या – हेमन्त ऋतु में संचित हुआ कफ वसन्त ऋतु में सूर्य की किरणों से प्रेरित (द्रवीभूत) होकर जठराग्नि को मन्द कर देता है अत: अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उस संचित कफ को दूर करने के लिये वसन्त ऋतु में वमन आदि पंचकर्म कराने चाहियें। वसन्त ऋतु में गुरु, अम्ल स्निग्ध और मधुर आहार तथा दिन में शयन नहीं करना चाहिये। वसन्त ऋतु में वमनादि पंचकर्म का विधान किया गया है। शोधन कर्म के लिये वसन्त ऋतु से फाल्गुन और चैत्र मास लेना चाहिये। जौ-गेंहू प्रायः मधुर रस वाले होते हैं और इसका सेवन वसन्त में निषिद्ध किया गया है अत: जौं-गेहूं पुराने लेने चाहिये। पुराने जौं-गेहूं मधुर होते हुये भी कफकारक नहीं होते।

४, ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अपनी किरणों द्वारा संसार के स्नेह को सोख लेता है अत: इस काल में मधुर रस तथा शीतवीर्य वाले द्रव्य, द्रव तथा स्निग्ध अन्न-पान, चीनी के साथ शीतल मन्थ, घी-दूध चावल इनका सेवन करने से स्वाभाविक बल का नाश नहीं होने पाता। ग्रीष्म ऋतु में लवण, अम्ल तथा कटु रस वाले और उष्णवीर्य द्रव्यों का सेवन तथा व्यायाम नहीं करना चाहिये। ग्रीष्म ऋतु में दिन के समय शीतल कमरे में तथा रात्रि के समय चांदनी से शीतल हुये हवादार छत पर शरीर में चन्दन का लेप लगाकर सोना चाहिये, मोती-मणि आदि से देह अलंकृत करके चन्दन मिले जल से ठण्डे किये हुये पंखों की हवा और कोमल हाथों का स्पर्श प्राप्त करते हुये आसन पर बैठना चाहिये तथा शीतल उद्यान शीतल

जल और शीतल पुष्पों का सेवन करना चाहिये।

५, वर्षा ऋतुचर्या – आदान काल में मनुष्यों का शरीर अत्यन्त दुर्बल रहता है। दुर्बल शरीर में एक तो जठराग्नि दुर्बल रहती है वर्षाऋतु आ जाने पर दूषित वातादि दोषों से दुष्ट जठ–राग्नि और भी दुर्बल हो जाती है। इस ऋतु में भूमि से भाप निक-लने, आकाश से जल बरसने तथा जल का अम्ल विपाक होने के कारण जब अग्नि का बल अत्यन्त क्षीण हो जाता है तब वातादि दोष कुपित हो जाते हैं। अतः वर्षाकाल में साधारण रूप से सभी विधियों (नियमों) का पालन करना चाहिये। साधारण नियम का तात्पर्य त्रिदोषनाशक वस्तुओं के सेवन से है। वर्षा ऋतु में उद-मन्थ (जल में घुला सत्तू), दिन मे सोना, अवश्याय (ओस गिरते समय उसमें बैठना या घूमना),नदी का जल व्यायाम, धूप में बैठना आदि छोड देना चाहिये। वर्षा ऋतु में खाने-पीने की सभी चीज बनाते समय उनमें मधु अवश्य मिला लेना चाहिये। वात और वर्षा से भरे उन विशेष शीत वाले दिनों में अम्ल तथा लवण रस वाले स्नेह द्रव्यों (घृतादि) की प्रधानता रहनी चाहिये जठराग्नि की रक्षा चाहनें वाले पुरुषों को भोजन में पुरानें जौ,गेहूं और चावल का प्रयोग अवश्य करना चाहिये। वर्षा ऋतु में माहेन्द्र (आकाश का), जल गरम करके शीतल किया हुआ जल, कूप का या सरोवर का जल पीना चाहिये। हलके और पवित्र वस्त्र धारण करना और क्लेद रहित सूखे स्थान पर रहना चाहिये।

६, शरद् ऋतुचर्या – वर्षा काल में जिनको शीत सात्म्य हो गया रहता है ऐसे लोगों के अंग साहसा सूर्य की प्रखर किरणों से तृप्त हो जाते हैं,फलतः वर्षा ऋतु में संचित हुआ पित्त शरद् ऋतु में प्रकुपित हो जाता है। अच्छी भूख लगने पर रस मे मधुर गुण में

शीतल कुछ तिक्त रस युक्त एवं पित्र को शान्त करने वाले अन्न पान का मात्रा पूर्वक सेवन करना चाहिये। अच्छी तरह भूख लगने पर खाने का अभिप्राय यह है कि शरद् ऋतु में स्वभावत: सब की अग्नि मन्द रहती है क्योंकि पित्त बढा रहता है। अत: तिक्त घृत के पान से या तो दुष्ट रक्त की शुद्धि करनी चाहिये अथवा विरेचन द्वारा उसका निर्हरण करना चाहिये। इससे प्राय: रक्त की शुद्धि हो जाती है।

इस प्रकार षड् ऋतुचर्या पर ध्यान देने से स्वास्थ्य की रक्षा हो सकती है।

—०—

आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान

जो मानव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों का अभि- लाषी होवे, वह आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान से चिकित्सा करावे । साथ ही उसे इसे पढना, समझना और सीखना ही चाहिये । क्योंकि आयुर्वेद ही एक विश्व में ऐसा चिकित्सा विज्ञान है जिसके अन्त- र्गत चिकित्सा योग्य आवश्यक वस्तुयें विद्यमान हैं । यथा –१ काय चिकित्सा, २, शल्य चिकित्सा, ३, शालाक्य, ४, कौमारभृत्य, ५, अगद तन्त्र, ६, भूतविद्या, ७, रसायन तन्त्र, ८, वाजीकरण तन्त्र । आयुर्वेदिक ग्रन्थानुसार इनके लक्षण प्रस्तुत करते है :-

१, काय चिकित्सा – सम्पूर्ण शरीर के किसी भी अवयव में आश्रित रोगों को समूल नष्ट करने के निमित्त जो यत्न किया जाता है उसे काय चिकित्सा कहते हैं। कहा भी गया है – " काय " काय चिकित्सा नाम सर्वांगसंश्रितानां व्याधीनां ज्वरातिसार- रक्तपित्त शोषोन्मादापस्मारकुष्ठमेहादीनामुपशमनार्थम् । "

२, शल्य तन्त्र– शरीर के आभ्यन्तर काष्ठ (लकडी की फांस आदि) लोहे की कील, बाल,नख,शस्त्र के टुकडे अथवा गर्भादि के अन्तर मृतगर्भ हो उसको निकालने के लिये या घाव के निश्चय करने के लिये जो शस्त्र का उपयोग कर कार्य सम्पादन करने के यत्न को शल्य तन्त्र कहते हैं । सुश्रुत ने कहा है – तत्र शल्यं नाम विविधतृणकाष्ठपाषाणपांशुलोह लोष्ठास्थिबालनखपूयास्रावदुष्ट व्रणान्तर्गर्भशल्योद्धरणार्थं यन्त्रशस्त्रक्षाराग्नि प्रणिधानव्रण- विनिश्चयार्थं च " ।

३, शालाक्य – कण्ठ से ऊपर के अंग, यथा मुख, नाक, नेत्र ओष्ठ, कान आदि में उत्पन्न हुये रोगों को दूर करने के लिये जो यत्न किया जाता है उसे ही शालाक्य कहते हैं। जैसे कि आयुर्वेद में निर्देश –

" शालाक्य नाम ऊर्ध्वजत्रुगतानां रोगाणां श्रवणनयनवदन घ्राणादि सांश्रितानां व्याधीनामुपशमनार्थम् "।

४, कौमारभृत्य – बालकों का पालन, पोषण, धाय के दूध में जो दोष होते हैं उनके तथा उस बिगडे हुये दुग्धपान करने मे बालकों में जो रोगों का प्रादुर्भाव होता है उसे शमन करने के यत्नों को " कौमारभृत्य तन्त्र कहते है। " कौमारभृत्यं नाम कुमार मरणधात्रीक्षीरदोष संशोधनार्थं दुष्टस्तन्यग्रह समुत्थानां च व्याधी-नामुपशमनार्थम्।

५, अगदतन्त्र – सर्प, कीडे, बन्दर, श्वान, मूषक आदि विष-धारी जीवों के काटने से जो मनुष्यों के शरीर में विष फैल जाता है: उसको दूर करने में जो भी प्रयत्न किया जाता है उसे ' अगदतन्त्र ' कहते है। यथा– 'अगदतन्त्रं नाम सर्पकीटलूता वृश्चिक मूषिकादि-दष्ट विषत्यजनार्थ विविध विषसंयोगोपशमनार्थम्।

६, भूतविद्या – जो देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर, पिशाच, सर्प, और ग्रहादि में चित्त लगने से अनेकानेक भ्रम-जन्य पीडा होती है उसके शान्त्यर्थ जो यत्न किया जाय उसे 'भूत-विद्या' कहकर संबोधित करते हैं। जैसे कि सुश्रुत ने इंगित किया है। " भूतविद्या नाम देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षः पितृपिशाचनागग्रहा-द्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्म बलिहरणादि ग्रहोपशमनार्थम् "।

७, रसायन तन्त्र – महर्षि सुश्रुताचार्य ने लिखा है - "रसायनतन्त्रं नाम वयः स्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगोपहरणसमर्थं च।"

जिससे मनुष्यों की आयु पूर्ण हो और वल बुद्धि की वृद्धि तथा समस्त रोग से बचने का जो यत्न करता है उसे रसायन तन्त्र कहते हैं।

८, वाजीकरण तन्त्र – जिससे थोडे वीर्य वाले पुरुष की वीर्यवृद्धि, बिगडे वीर्य वाले की वीर्य शुद्धि और क्षीणवीर्य वाले की वीर्योत्पत्ति और उक्त तीनों प्रकार के मनुष्यों को आनन्द दनें के निमित्त जो यत्न किया जाता है उसे वाजीकरण तन्त्र कहते हैं।

आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान विश्व में सब से पुराना और पहला है, क्यों कि वेदों में इसका उल्लेख है।

–०–

नाडी दर्शन

नाडी परीक्षा :- पुरुष रोगी हो तो उसके दाहिने हाथ की और स्त्री रोगिणी हो तो उसके बायें हाथ की नाडी देखें। परन्तु वैद्य को उचित है कि एकाग्र और प्रसन्नचित होकर विचार पूर्वक रोगी के हाथ को हिलने न दे। इसी प्रकार अंगूठे के समीप जड में धमनी नामक जीव की साक्षी नाडी है। वह जीव के सब दुःख सुख कों बताती है उसको वैद्य अच्छे प्रकार अपनी तीन अंगुलियों से देखें। जैसे राग के जानने वाले को वीणा की तान से सब रोग विदित हो जाते है, इसी प्रकार नाडी भी शरीर के सब दुःख-सुख को बताती है। और जो तत्काल स्नान करके आया हो, तत्काल भोजन किया हो, शरीर में तेल लगाया हो, सोते से उठा हो, दौडता आया हो और भूखा प्यासा, कामातुर मल-मूत्र आदि से वेग युक्त हो, उस पुरुष की नाडी ग्रन्थ के मत से नहीं देखनी चाहिये। यदि देखें तो वैद्य को रोगी के रोग का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है। जैसे वैद्य रोगी के हाथ की नाडी देखे वैसे ही रोगी के पैर की भी नाडी देखें शास्त्र की परिपाटी और अपनी बुद्धि के प्रभाव से जैसे जौहरी अपने अभ्यास के बल से हीरा आदि रत्नों के सच्चे और झूठेपन को कह देता है वैसे ही सद्वैद्य भी शास्त्र के अभ्यास के बल से रोगी के रोग की साध्यता और असाध्यता और शरीर के दुःख सुख चेष्टा को जान लेता है।

नाडी की पहिचान :- अंगूठे से लगी हुई तीन अंगुलियों में 'तर्जनी' के नीचे वायु की मुख्य नाडी चलती है। बीच की अंगुली के

नीचे पित्त की और पिछली 'अनामिका' अंगली के नीचे कफ की नाडी चलती हैं। जैसे सर्प, जोंक आदि जीव टेढे चलते हैं तैसे ही वायु की नाडी भी बांकी और तिरछी चलती हैं और जैसे काक कलंग, मेंढक आदि फुदकते और शीघ्रता युक्त चलते हैं तैसे ही पित्त की नाडी उतावली और फुदकती चलती हैं, और राजहंस, मोर, बत्तख, मुर्ग, कबूतर आदि जीव मन्द मन्द चलते हैं तैसे ही कफ की नाडी भी मन्द मन्द चलती है। जो बार-बार सर्प और मेंढक की सी गति चले, उसको वात पित की नाडी जानिये।

जिस नाडी की सर्प और हंस की सी गति हो उसकी वात कफ की जानिये मेंढक और हंस कीसी गति हो उसको पित्त कफ की जानियें। सर्प, मेंढक और हंस इन तीनों के समान जो नाडी चलती है, उसको सन्निपात की नाडी समझना चाहिये। जैसे खाती चीरे हुये काष्ठ को अत्यन्त वेग से काटता हैं तैसे ही जिस पुरुष की नाडी चले और चलने से रुक जाय और फिर चलने लगे उस नाडी को भी सन्निपात की समझना चाहिये।

परन्तु जो मन्द-मन्द टेडी मेंढी व्याकुलता पूर्वक स्थिर अस्थिर हो वह धमनी नाडी जीव के सूक्ष्म हो जाने से मारने वाली होती हैं, उस नाडी को सन्निपात की जानिये। जिस पुरुष के ज्वर का कोप हो उसकी नाडी बहुत गरम और जल्दी जल्दी चलती हैं। और जिस रोगी की नाडी एक ढंग से अपने स्थान पर चले वह रोगी नहीं मरता। कामातुर पुरुष की नाडी शीघ्रता युक्त चलती हैं। क्रोधी और चिन्तावान् पुरुष की नाडी क्षीण चलती हैं. और कई प्रकार भयभीत हुये पुरुष की नाडी महाक्षीण चलती हैं। मन्दाग्नि और क्षीण धातु वाले पुरुष की नाडी महामन्द चलती हैं। रुधिर के विकार वाले पुरुष कि नाडी कुछ गरम और भारी चलती हैं और

जिस पुरुष के पेट में आंव का विकार, जिस की नाडी अत्यन्त भारी चलती है और जिस पुरुष को भूख बहुत लगी हो उसकी नाडी चपल होती है। जो पुरुष आहार बहुत करता हो उसकी नाडी हलकी और उतावली चलती है। जिस पुरुष ने भोजन किया हो उसकी नाडी धीमी चलती है। जिस पुरुष के मल का उत्पात हुआ हो उसकी नाडी बहुत उतावली चलती है। सुखी मनुष्य की भी नाडी धीमी और बलयुक्त चलती है। नाडी की परीक्षा अनेक प्रकार की है बुद्धिमान् सद् वैद्य अपनी बुद्धि से नाडी के द्वारा शरीर का सब दुःख सुख विचारले। जैसे योगी को योग के अभ्यास द्वारा ब्रह्म का साक्षात ज्ञान हो जाता है तैसे ही सद्वैद्य को नाडी के अभ्यास से शरीर के सब रोग और सुख दुःख का ज्ञान हो जाता है।

—०—

आयुर्वेद चिकित्सा के चार भाग

चिकित्सा शब्द का अर्थ :-

चिकित्सा का अर्थ रोगनिवृत्तिजनक व्यापार है। अर्थात् जिस व्यापार से रोग उत्पन्न न हो या जिस व्यापर से उत्पन्न रोग शान्त हो जाय उसे चिकित्सा कहते हैं। संस्कृत व्याकरण में "कित् निवासे रोगापनयने च" इस भ्वादिगण की धातु से 'सन्' प्रत्यय करने पर उक्त रूप की सिद्धि होती है। केवल व्याधिप्रतिकार व्यापार अर्थ में ही 'कित्' धातु से सन् प्रत्यय होता है। चिकित्सा का लक्षण करते समय चरक शास्त्र के आचार्य ने भी रोगापनयन व्यापार को ही चिकित्सा बताया है। यथा :-

चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते।
प्रवृत्तिधातुसाम्यर्था चिकित्सेत्यभिधीयते ॥

(चरक सूत्र स्थान अध्याय ९। श्लोक ५)

अर्थ :- धातु के विकृत होने पर उन धातुओं में समता लाने के लिये उत्तम वैद्य आदि चिकित्सा के चार पादों की जो प्रवृत्ति होती है उसे चिकित्सा कहा जाता है।

चिकित्सा के चार पाद: -

भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पाद चतुष्टयम्।
गुणवत् कारणं ज्ञेयं विकार व्युपशान्तये ॥

(चरक सूत्र स्थान अध्याय ९ श्लोक ३)

अर्थ :— १, गुणवान् वैद्य, २. गुणवान् द्रव्य, ३. गुणवान् उपस्थाता, ४. गुणवान् रोगी, चिकित्सा के ये चार पाद सम्पूर्ण रोगों की शान्ति में कारण होते हैं।

यहां चिकित्सा के चार पादों का वर्णन किया गया है। इनमें सबसे प्रधान वैद्य है, उसके बाद औषध परिचारक और रोगी आते हैं, अतः इसी क्रम से ये यहां लिखे गये हैं।

वैद्य के गुण –

श्रुते पर्यवदातत्वं बहुशो दृष्टकर्मता।
दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुण चतुष्टयम्॥
(चरक सूत्र स्थान अध्याय ८ श्लोक ६)

अर्थ :— १, शास्त्र का अच्छी प्रकार ज्ञान रखना, २, अनेक बार रोगी, औषध–निर्माण तथा औषध प्रयोग का प्रत्यक्ष द्रष्टा होना, ३. दक्ष होना अर्थात् समय के अनुसार व्यक्ति की कल्पना करने में परम चतुर होना तथा, ४. पवित्रता रखना, यह चारों वैद्य के उत्तम गुण माने जाते हैं।

उत्तम औषधि के गुण :–

बहुता तत्र योग्यत्वमनेक विध कल्पना।
संपच्चेति चतुष्कोयं द्रव्याणां गुण उच्यते॥
(चरक सूत्र स्थान अध्याय ८। श्लोक ७)

अर्थ :— १. औषधियों का अधिक रूप में प्राप्त होना, २, औषधियों का व्याधिनाश में समर्थ होना, ३. एक ही औषध में अनेकविध (स्वरस, कल्क, चूर्ण, वटी, अवलेह आदि) कल्पना की योग्यता होना, तथा ४. औषधियो का अपने रस, गुण, वीर्य, विपाकादि गुणों से युक्त होना, ये चारों औषधि के उत्तम गुण माने जाते हैं।

उपचारक (परिचारक) के गुण :-

उपचारज्ञता दाक्ष्यमनुरागश्च भर्तरि ।
शौचं चेति चतुष्कोऽयं गुण: परिचरे जने ।।

(चरक सूत्र स्थान अध्याय ८ । श्लोक ७)

अर्थ :- १, सेवा कार्य का पूर्ण ज्ञान, २. चतुरता, ३. अपने मालिक (रोगी) के प्रति अधिक प्रेम और. ४. पवित्रता इन चार इन चार गुणों का परिचारक में होना उत्तम माना जाता है ।

रोगी के गुण :-

स्मृतिनिर्देशकारित्वमभीरुत्वमथापि च ।
ज्ञापकत्वं च रोगाणामातुरस्य गुणा: स्मृता: ।।

(चरक सूत्र स्थान अध्या ८ । श्लोक ८)

अर्थ :- १. स्मरण शक्ति: २, वैद्यकी आज्ञाओं के पालन की प्रवृत्ति, ३, निर्भयता और, ४, रोग तथा उपद्रवों को अच्छी प्रकार बता सकना, ये चार रोगी के उत्तम गुण माने गये हैं ।

वैद्य की प्रधानता:-

कारणं षोडश गुणं सिद्धौ पादचतुष्टयम् ।
विज्ञता शासिता योक्ता प्रधान भिषगत्र तु ।।

(चरक सूत्र स्थान अ० ८ । श्लोक १०)

अर्थ :- सोलह गुणों से युक्त ये चिकित्सा के चार पाद चिकित्सा की सिद्धि में करण हैं । इन चारो में औषधों को जानने वाला, परिचारक पर शासन करने वाला और रोगी में रोगानुसार औषध योगों का योग करने वाला होता है अत: वैद्य ही प्रधान माना गया है ।

वैद्य की चार वृत्तियां :-

मैत्री, कारुण्यमार्तेषु शक्ये प्रीति रुपेक्षणम् ।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा ॥
(चरक सू० अ० ९ । श्लोक २६)

अर्थ :- १, मैत्री-प्राणी मात्र में मित्रता का व्यवहार, २, आर्तेषु कारुण्यम्- रोगी व्यक्तियों पर दया का भाव, ३, शक्ये प्रीति साध्य रोगों में प्रेम पूर्वक चिकित्सा करना और, ४. प्रकृति स्थेषु भूतेषु उपेक्षणम् :- असाध्य रोगी या रोग में उपेक्षा का भाव रखना. वैद्यों में ये चार प्रकार की वृत्तियां होनी चाहिए।

—०—

आयुर्वेद में छः रसों के लक्षण, गुण पदार्थ

छः रसों के लक्षण :–

मधुर रस – जो रस तुष्टि को उत्पन्न करता है, सुख उत्पन्न करता है, तृप्ति करता है, प्राणों को धारण करता है, मुख को मल से लिप्त करता है और कफ को बढ़ाता है, वह मधुर है।

अम्ल रस–जो रस दान्तों में हर्ष उत्पन्न करता है, मुख में लाला का स्राव उत्पन्न करता है, भोजन में श्रद्धा को उत्पन्न करता है वह अम्ल रस है।

लवण रस – जो भोजन में रुचि उत्पन्न करता है, कफ का प्रसेक तथा मृदुता का आपादक है वह लवण रस है।

कटु रस जो रस जीभ के अगले भाग को पीडित करता है, नासिका स्राव बहाता है, वह कटु रस है।

तिक्त रस–जो गले में खिचाव [चूसने की तरह पीडा] उत्पन्न करता है वह तिक्त रस है।

कषाय रस - जो रस मुख को शुष्क कर देता हैं, जिव्हा को जड बना देता हैं, गले को रोक देता है, हृदय [आमाशय] को खींचता हैं और पीडित करता हैं।

छः रसों के गुण :–

मधुर रस के गुण - रस, रक्त, मांस, भेद, अस्थि, मज्जा, ओज, शुक्र, स्तन्य (दूध स्त्रियों में) को बढाने वाला, आंखों वाला

तथा शरीर के वर्ण के लिये हितकारी है, बलकारक, जोडने वाला, रस-रक्त को स्वच्छ करने वाला, बालक, वृद्ध और क्षत रोगी के लिये हितकारी, गौरे और चिऊँटियों के लिये प्रियतर, तृष्णा मूर्च्छा दाह को शान्त करने वाला, मन समेत पांचों ज्ञानेन्द्रियों को प्रसन्न करने वाला और कृमियों तथा कफ को उत्पन्न करता है। यह मधुर रस उपर्युक्त गुणों वाला होने पर भी अकेला ही अधिक मात्रा में सेवन करने से - कास, श्वास, अलसक, वमन मुखकी मधुरता, स्वर भंग, कृमि, गलगण्ड रोगों को एवं अर्बुद, श्लीपद, वस्ती--गुदा में चिपचिपापन, दुःखना आदि रोगों को उत्पन्न करता है।

अम्ल रस के गुण - आहार का पाचन करने वाला, दोष एवं आम का पाचन करने वाला, अग्नि दीपक, वायु को शान्त करने वाला, वायु मल मूत्र का अनुलोमक, कोष्ठ में विदाह करने वाला बाह्य उपचार में शीतल, क्लेदक प्रायः हृदय के लिये हितकारक होता है। इन गुणों वाला होने पर भी अकेला अम्ल रस ही अधिक सेवन करने से दांतों में जडता, आंखों का संकोच रोमहर्ष, कफ का पतलापन और शरीर की शिथिलता को उत्पन्न करता है। चोट युक्त जला हुआ, डंसा हुआ, भग्न, सूना, रुग्ण, स्खलित, मूत्र विष से दूषित को, विसर्प छिन्न-भिन्न विद्ध उत्पिष्ट आदि व्रणों को आग्नेय स्वभाव होने से पका देता है। गला, छाती और हृदय को जलाता है।

लवण रस के गुण-वमन विरेचन द्वारा संशोधक, अन्न का पाचक, रस एवं मल का विश्लेषक, आहार का क्लेदक तथा शिथिलता कारक, उष्ण, सब रसों से विपरीत, विशोधक, शरीर के सब अवयवों को कोमल करता है। इन गुणों वाला होने पर भी अकेला लवण रस ही अधिक मात्रा में सेवन करने से शरीर में कण्डू कोढ शोथ, विवर्णता, शुक्रक्षय, इन्द्रियों नेत्रादि का उपताप (अपने कर्मों

की हानि अर्थात् शक्तिनाश) मुख-आँख का पाक, रक्तपित्त, अन्य द्वार को उत्पन्न करता है।

कटु रस के गुण—अग्नि दीपक, आहार का पाचक, रोचक, शोधक, स्थूलता, आलस्य, कफ, कृमि, विष, कुष्ठ, कण्डू को शान्त करने वाला, सन्धिबन्धों का विच्छेदक, अनुत्साह उत्पन्न करने वाला, दुग्ध, शुक्र एवं मेद को नष्ट करने वाला है। इन गुणों वाला होने पर भी अकेला कटु रस अधिक मात्रा में सेवन करने से भ्रम, मद, गला, तालु-ओंठ की शुष्कता, मांस संताप, बल का ह्रास, कम्प-तोद भेद उत्पन्न करता है, हाथ-पांव, पार्श्व-पीठ आदि अवयवों में वात जन्य शूलों को उत्पन्न करता है।

तिक्त रस के गुण – कफ का छेदक, रोचक (स्वयं रुचि-कर न होकर भी दूसरों में रुचि उत्पन्न करने वाला) कण्ठ कोढ, श्वास-मूर्च्छा-ज्वर को शान्त करने वाला दुग्ध का शोधक मल-मूत्र आर्द्रता-मेद वसा-पूय को सुखाने वाला भी यह रस अकेला अधिक सेवन करने से शरीर-मन्या (ग्रीवा की दो शिरायें) का स्तम्भ आक्षेप, अर्दित, शिरः शूल, भ्रम, तोद, भेद, छेद (विचित्र प्रकार की पीडा) मुख की विरसता को उत्पन्न करता है।

कषाय रस के गुण - संग्राही, व्रणरोपक, स्तम्भक, व्रणशोधक लेखक, शोषक, पीडक, क्लेद (आर्द्रता) को सुखाने वाला है। यही रस इन तीनों के होने पर भी अकेला अधिक मात्रा में सेवन करने पर—हृदय की पीडा, मुख की शुष्कता, उदर में आहमान, वाणी की जडता, मन्या स्तम्भ गात्रों में स्फुरण, चुपचुमायन, आकुंचन, आक्षेप उत्पन्न करता है। वायु के विकार उत्पन्न करता है।

छः रसों के पदार्थ :—

मधुर रस के पदार्थ :- दूध, घी, शालि, शाठी, जौ, गेहूं

सिंघाड़ा, कसेरु, खीरा ककड़ी, खरबूजा तुम्बी, तरबूज, निर्मल का बीज, पियाल, कमल गट्टा, गम्भारी महुवा, मुनक्का, खजूर, सिंघाड़ा, ताड़, नारियल, गन्ना और गन्ने के रस से बनी हुई वस्तुयें, बरेटी, अनि-बला, विदारीकन्द, गोखरु, तुरन्त प्रसूता गाय का सात दिन तक अशुद्ध दूध अर्थात् खीस मधूलिका, पेठा आदि संक्षेप में मधुर वर्ग है।

अम्ल रस के पदार्थ :- अनार, आंवला, बिजौरा, आमड़ा, कैथ, करौदा, वृक्ष का बेर, झाड़ी का बेर, सूखा आंवला, इमली, कोशाम्र (आम का भेद) कमरख, पारावत, बड़हल, अम्लवेतस, निम्बू, दही, छाछ, कांजी, तुषोदक, धान्याम्ल आदि संक्षेप में अम्ल-वर्ग है।

लवण रस के पदार्थ - सैन्धव, सौवर्चल, विड, पाक्य, रोमक सामुद्रक पवित्रम [पाक द्वारा बनाया] यवक्षार ऊषर लवण सज्जीक्षार आदि संक्षेप में लवणवर्ग है।

कटु रस के पदार्थ - पिप्पल्यादि, सुरसादि गण सहजन मूली, लहसून, सुमुख (तुलसी भेद) कर्पूर कूठ देवदारु मेथी, बावची बीज चण्डा गुग्गुल नागर मोथा पीलु आदि संक्षेप में कटुवर्ग है।

तिक्त रस के पदार्थ :- मण्डूक पर्णी हल्दी, दारुहल्दी, इन्द्र जौं, सतवन, छोटी बडी कटेरी, शंखिनी, द्रवन्ती, निशोथ, तुरई करेला, बैंगन, करीर, कनेर शंख पुष्पी, अपामार्ग, पुनर्नवा, बिच्छू बूटी, मालकांगनी आदि द्रव्य संक्षेप में तिक्तवर्ग है।

कषाय रस के पदार्थ - न्यग्रोधादि, त्रिफला, जामुन, आम मौलसरी, तिन्दुक-इन सब वृक्षों के फल निर्मली, कचनार, जीवन्ती बथुआ, पालक, मूंग, आदि दालें-संक्षेप में कषाय वर्ग है।

" तत्र मधुराम्ल लवण वातघ्ना: मधुरतिक्तकषाया: पित्तघ्ना: कटु तिक्त कषाया: श्लेष्मघ्ना: ।" (सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ४२-१)

अर्थ - इनमें मधुर-अम्ल और लवण वायु का मधुर तिक्त और कषाय पित्त का कटु तिक्त और कषाय कफ का नाश करते हैं।

हमारा भोजन

भोजन के विषय में हमें तीन दृष्टिकोणों से विचार करना चाहिये -

१. वैज्ञानिक २. धार्मिक ३. आर्थिक ।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण–आचार्य चरक नें स्निग्ध भोजन का महत्व बतलाते हुये बताया है कि -

" स्निग्धंमश्नीयात्, स्निग्धं हि भुज्यमानं स्वदते, भुक्तं चानुदीर्णमग्निमुदीरयति, क्षिप्रं जरां गच्छति, वातमनुलोभयति, शरीरमुपचिनोति, दृढीकरोतीन्द्रियाणि, बलाभिवृद्धिमुपजनयति, वर्ण प्रसादं चाभिनिर्वर्त्तयति, तस्माद् स्निग्ध मश्नीयात् ।।

भोजन के सम्यक् पचने में उपयोगी पदार्थो में एक स्निग्धता है । स्निग्ध भोजन अन्न पान को स्वादु बनाने वाला, अग्नि को उत्तजित करने वाला, सुपच, वातनुलोभक, इन्द्रियों को दृढ़ करने वाला बलवर्द्धक और वर्ण को निर्मल करने वाला होता है । अतः स्निग्ध भोजन करना चाहिये ।

मांस स्निग्ध भोजन में नहीं आता है अर्थात् मांस रुक्ष है। शिशुओं का सर्वोत्तम आहार माता का दुग्ध होना है । " प्रकृतिभूतत्वात् तत्पुष्टिकरमारोग्यकरंचेति" मातृदुग्ध के अभाव में शिशुओं को बकरी या गो दुग्ध पिलाने का विधान सुश्रुत संहिता में मिलता है ।

महर्षियों ने यह कहीं भी नहीं बताया कि बच्चों को मातृ-

दुग्ध के अभाव में मांस स्वरस देकर बच्चों को जीवित रखा जाय। कायाकल्प करने के लिये जितनी भी औषधियों तथा द्रव्यों का वर्णन है उनमें मांस सेवन द्वारा कायाकल्प करने का विधान किन्हीं भी शास्त्रकारों ने नहीं बतलाया। दुग्धाहार कराकर कायाकल्प करने की विधि का उल्लेख मिलता है। जीर्ण शीर्ण शरीर के पूर्णोद्धार के लिये आयुर्वेद में रसायन के सैकडों प्रयोग दिये गये है। उनमें कहीं भी मांसाहार की सिफारिश नहीं की गई है।

धार्मिक दृष्टिकोण – जिस तरह देश का शासन चलाने के लिये संविधान बनाया जाता है, उसी तरह मनुष्यों को धर्म पर चलने के लिये मनुस्मृति की रचना की। मनु ने हिंसा को पाप और अहिंसा को धर्म कहा है।

गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि जो दान बिना सत्कार के अयोग्य देशकाल में कुपात्रों के लिये अर्थात् मद्य–मांसादि अभक्ष्य वस्तुओं के खाने वालों एवं चोरी–जारी नीच कर्म करने वालों के लिये दिया जाता है वह दान तामस कहा गया है।

अदेश–काले यद् दानमपात्रेभ्यो दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥

कहने का अभिप्राय यह है कि मद्य मांसादि खाने वालों को कुपात्र कहा गया है। धार्मिक दृष्टिकोण से भी यह सिद्ध होता है कि मांसाहार महापाप है।

आर्थिक दृष्टिकोण – भारत वर्ष एक गरीब देश है। यहा पर प्रकृति प्रदत्त वस्तु प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। खाद्य पदार्थों में साग–सब्जी, फल–फूल, दूध आदि सस्ते और सुलभ हैं, जो कि प्राणियों का मूल आहार है। मांस लगभग १५ रुपये प्रति किलो की दर से मिलते हैं तथा भोजन योग्य बनाने में भी तीन रुपये और

मिलो दूध मिल जाता है।
लगने है। जब कि उतनें ही खर्च में ५ किलो दूध मिल जाता है।
एक किलो मांस में जितना प्रोटीन प्राप्त होगा उससे ज्यादा प्रोटीन
के साथ साथ खनिज भी ५ किलो दूध में प्राप्त होगा होगा। मांस
पकने में लगभग १ घंटा समय लगेगा जब कि दूध उबालने में लग-
भग १० मिनट समय की भी बचत मांस पकानें की अपेक्षा दूध उबा
लने में है।

—०—

मांसाहार महापाप

कुछ आधुनिक विद्वान् मांसाहार की विशेष उपयोगिता अपने यत्र-तत्र लेखों में किया करते हैं। अतः हम वैद्यों को मांसाहार या शाकाहार में विशेष प्रयोजनीय उपयोगी कौन है, इस पर गम्भीर अध्ययन कर पाठकों एवं विद्वान् बन्धुओं के समक्ष प्रस्तुत करते रहना चाहिये।

मांस के सेवन से शरीर की आंते सड जाती हैं। मांस शीघ्र नहीं पचता, जानवरों के शरीर में तरह तरह की व्याधियां होती हैं, जिनसे मानव के शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। जब कोई व्यक्ति व्याधि ग्रस्त होता है तो चिकित्सक मांस सेवन बन्द करने की सलाह देते हैं, जब तक कि वह पूर्ण स्वस्थ नहीं होता है तब तक पूर्ण शाकाहार पर निर्भर रहने की सलाह देते हैं। अतः इस बात से सिद्ध होता है कि जो व्यक्ति अपनी बुद्धि, स्मृति बल एवं आयुष्य बनाये रखने की इच्छा रहता हो उसको मांस, मछली ऐसे प्राणिज द्रव्यों का सर्वदा त्याग करना चाहिये। क्योंकि यह काया के लिये हितकर नहीं है। विजातीय पदार्थों से शरीर का कभी भी पोषण नहीं हो सकता। चावल दाल, हरे साग सब्जियां, दूध, घी, ताजे फलों में शरीरोपयोगी सारे तत्त्व मिलते हैं।

महर्षियों ने यह कहीं भी नहीं बताया कि बच्चों को मातृ-दुग्ध के अभाव में मांस या मांस या स्वरस देकर बच्चों को जीवित रखा जाय। कायाकल्प करने के लिये जितनी भी औषधियां तथा द्रव्यों का वर्णन है उनमें मांस सेवन द्वारा कायाकल्प करने का

विधान किन्ही भी शास्त्रकारों ने नहीं बतलाया । दुग्धाहार कराकर कायाकल्प करने की विधि का उल्लेख मिलता है। जीर्ण-शीर्ण शरीर के जीर्णोद्धार के लिये आयुर्वेद में रसायन के सैंकड़ों प्रयोग दिये है उनमें कहीं भी मांसाहार का विधान नहीं किया है । शुक्रक्षय के लिये हमारे ग्रन्थों में दुग्ध और घृत का वर्णन दिया है, मांस का नहीं । " शुक्रक्षये क्षीरर्म्पिषोरुपयोगो मधुरस्निग्ध समाख्यातानां चापरेषां द्रव्याणाम् । सद्यः शुक्रकरः पयः ॥ " मज्जाक्षय चिकित्सा में भी स्निग्ध द्रव्यों का उपयोग कराना चाहिये । अस्थिक्षय चिकित्सा में भी विधान नहीं है । क्षीण अस्थि के साम्य के लिये ऐसे द्रव्य स्वयं अस्थि, समान गुण या समान गुण भूयिष्ठ तीन द्रव्यों का प्रयोग बताया गया है । अस्थिक्षय चिकित्सा में भी मांस की उपयोगिता नहीं बतलाई गई है । केवल मांस समान गुण भूयिष्ठ तीन प्रकार के द्रव्यों से चिकित्सा करने का विधान है । इन द्रव्यों में चना मूंग, अरहर, उडद, मसूर, गेहूं,जौं, [illegible],ताजे फल इत्यादि की गणना है । इससे प्रमाणित होता है कि मांसक्षय चिकित्सा में इन द्रव्यों से मांस की पूर्ति की जा सकती है । जो व्यक्ति दूध, फल, रोटी और सब्जियों का प्रयोग करते हैं वे मांस मदिरा का सेवन करने वालों से अधिक स्वस्थ बलवान् और परिश्रमी पाये जाते है अतः मांस मनुष्य का भोजन नहीं है ।

मांसाहार के भयंकर परिणामों तथा चेतावनियों के कारण पश्चिमी देशों में सैंकडों शाकाहार भोजनालयों की स्थापना की गई है अमेरिका में शाकाहारियों की संख्या बढती जा रही है । विदेश में अधिकांश लोगों ने शाकाहार भोजन जो कम खर्चीला है, खाने की आदत बनाली है । अतः हमें भी ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिये।

दीर्घायु के उपाय

जिव्हा पर नियन्त्रण :-

संस्कृत में एक लोकोक्ति है – 'जितं सर्व जिते ररे'' जिसका अर्थ है – जिसने रस के केन्द्र बिन्दु जिव्हा को जीत लिया उसने सबको जीत लिया, यहां तक की मौत को भी। जिव्हा का स्वादेन्द्रिय भी कहते हैं। इस स्वादेन्द्रिय को जिसने जीत लिया, यानी उसे कब्जे में कर लिया, उसने सबको अपने कब्जे में कर लिया। हमारा भोजन सादा, प्राकृतिक, सात्विक और सुपाच्य होना चाहिये। ऐसा भोजन शीघ्र पचकर शरीर में लग जाता है और उसे पुष्ट करता है। दीर्घ जीवन प्राप्ति के लिये ऐसे ही पौष्टिक आहार को जरूरत होती है। ऐसे भोजन से शरीर का रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र सातों की सातों धातुयें उत्तरोत्तर पूरे परिणाम में बन पाती है जिससे शरीर पूर्ण स्वस्थ और दीर्घायु वाला बनता है।

२. थोडा खाना–अधिक चबाना :-

भोजन सादा, सात्विक और पुष्टिकर हो, पर आवश्यकता से अधिक ने हो, साथ ही उसे खूब चबाकर न निगला जाय तो वह अस्वास्थ्यकर सिद्ध होता है। ऐसा भोजन पेट में जाकर पचता नहीं और रोग उत्पन्न करता है यदि रहे–भोजन को चबाने लिये, जिससे वह सुपाच्य व शीघ्र पाची बन जाय, भगवान् ने मुंह में दांत दिये हैं, पेट में नहीं। इसलिये जीवन के इच्छुकों को भोजन करते

समय अपने दांतों का खूब प्रयोग करना चाहिये ।

३, प्रचुर मात्रा में जलपान :–

जिस प्रकार गन्दी नाली को साफ करने के लिये उसमें रोज काफी पानी डालना आवश्यक है, इसी प्रकार शरीर स्थित नालियों को परिष्कृत करने के लिये हमें प्रतिदिन थोड़ा–थोडा करके पर्याप्त शुद्ध जल पीना चाहिये। ऐसा करने से ही प्रकृति पेशाब द्वारा यथेष्ट विष शरीर से बाहर निकाल देनें में समर्थ होगी ।

४. प्रातः भ्रमण, आसन व व्यायाम :–

उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य के अभिलाषियों को प्रातः भ्रमण, योगासन तथा व्यायाम का अभ्यासी होना चाहिये । इनसे रक्त शुद्ध होता है, शरीर की नाड़ियां सक्रिय और सुव्यवस्थित रहती हैं तथा उत्तम स्वास्थ्य बनता है ।

५. उपवास :–

उपवास से शरीर के दोष पचते है और जीवनी शक्ति बढती है, जिससे शरीर सदा नया और जवान बना रहता है । उपवास दीर्घ जीवन प्राप्त करने का एक सहज व सरल उपाय है । अधिक नहीं तो सप्ताह में एक दिन का उपवास तो अवश्य ही करना चाहिये ।

६. मानसिक संतुलन :–

चिन्ता, कलह, भय, घबराहट, परेशानी, क्रोध, व्यग्रता निराशा, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, काम, बहस, उद्वेग तथा कुढन आदि विध्वंसक मनोभावों पर विजय प्राप्त करना जीवन की सच–मुच सबसे बडी सफलता है, जिसकी मनुष्य को सुखी जीवन के लिये सख्त जरूरत होती है । ये विनाशकारी मनोभाव बडे भयंकर होते

हैं जो जीवनी शक्ति का रस चूस लेते हैं और जीवन छोटा बनाते हैं ।

७. संयम :-

शक्ति का संयम और उसका संचय सुखमय दीर्घ जीवन की कुंजी है और प्रतिक्षण सामर्थ्य प्रकृति द्वारा दी हुई खतरे की घंटी इन दोनों बातों की ओर जो सदा ध्यान दिये रहता है उसका जीवन दीर्घकाल तक सुखमय बना रहता है ।

८. हर प्रकार की अति से बचिये :-

अतिश्रम, अतिविश्राम, अतिनिद्रा, अतिभोजन, अति शीत, अतिताप, अतिव्यायाम, अतिचिन्तन तथा अतिभावुकता आदि शरीर के लिये विष का काम करती है। अतः लोकोक्ति है- " अति सर्वत्र वर्जयेत् । "

९. प्रसन्नता और संतोष अच्छी आदतें हैं। इनसे मनुष्य दीर्घ जीवी बनता है ।

—०—

अनुपान

आयुर्वेद में अनुपान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनुपान एक यौगिक शब्द है जो 'अनु' उपसर्ग पूर्वक 'पा' धातु से पीने के अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय के योग से सिद्ध होता है। अनु का अर्थ होता है बाद में (पश्चात् या साथ में) और पान का अर्थ है पीना या प्रयोग करना। यथा--अनु सह पश्चात् वा पीयते इति अनुपानम्। २ अन्नादनु पश्चात् पीयते इत्यनुपानम् अथवा अन्नमनुलक्ष्यो कृत्य पीयते इत्यनुपानम्।

अनुपान का सामान्य अर्थ है, भोजन के बाद पेय पदार्थ का पीया जाना। व्यवहार में उस पेय पदार्थ को भी "अनुपान" ही कहा जाता है यथा – 'आहारमभिधाय तस्यैव सुखपाकार्थमनुपान-मुपयुज्यते'।

इस विषय में आयुर्वेद में कहा है –

यथा जलगतं तैलं क्षणेनैव प्रसर्पति।
तथा भैषज्यमंगेषु प्रसर्पति अनुपानतः॥

अर्थात् जिस प्रकार जल में तैल छोडने से वह क्षण मात्र में ऊपर चारों तरफ फैल जाता है, उसी प्रकार अनुपान के बल से औषधि भी क्षणमात्र में ही सम्पूर्ण अंगों में फैल जाती है।

वाग्भट्ट ने भी लिखा है –

अनुपानं करोत्यूर्जी तृप्तिं व्याधि दृढांगताम्।
अंगसंघातशैथिल्यं विक्लित्तिजरणानि च॥

अर्थात् अनुपान–ऊर्ज (बल या मन की प्रसन्नता) तृप्ति अन्न का सम्पूर्ण शरीर में फैलाना, अंगों को नरम करना और पाचन करता है। और भी –

> तर्पणं मार्दवकरं श्रमभ्रमहरं सुखम्।
> दीपनं दोषशमनं पिपासाच्छेदनं परम्॥
> बल्यं वर्णकरं सम्यगनुपानं सदोच्यते॥

अर्थात् अनुपान तृप्ति तथा कोमलता कारक, श्रम भ्रमहारक सुखदायक, अग्नि उत्पादक, वात, पित्त, कफ, कोप संहारक, प्यास विदारक और बल एवं वर्णकारक होता है इतना ही नहीं औषधियों में भी कई ऐसी औषधियां होती हैं जिनका स्वाद अच्छा नहीं होता जिससे अरुचिवश रोगी आसानी से उन्हें ग्रहण नहीं करता। यदि बलात् सेवन कर भी दे तो रोगी को उल्टी तक हो जाती है। ऐसी विकट स्थिति में सुरुचिकर अनुपान के साथ औषधियां लेने से तो रोगी को आनन्द होता है।

> स्थिरतांगतमक्लिन्नं द्रवपायिनः।
> भवत्यवाधजनकमनुपानं मतः पिवत्॥

अर्थात् जो लोग भोजन के साथ तरल पदार्थ जल आदि का प्रयोग नहीं करते, उनका भोजन पेट में गीला न होकर सूखकर अनेक प्रकार की पीडा उत्पन्न कर देता है। अतः भोजन के बाद कोई न कोई तरल पदार्थों का सेवन अवश्य ही करना चाहिये। इसी प्रकार बिना अनुपान के औषधि भी कम गुणकारी होती है। अथवा सेवन योग्य नहीं रहती।

आयुर्वेद की एक–एक औषध अनेक रोगों पर काम करती हैं। किन्तु यह काम तभी करती हैं जब कि योगों के अनुसार अनुपान हो। यह आयुर्वेद की अपनी एक विशेषता है जो अन्यत्र नहीं है।

—०—

दूध, दही, छाछ, मठा, मक्खन, घी

सब देशों में दूध को सर्वप्रथम ईश्वरीय भोजन माना जाता है। दूध में सब से बड़ी खूबी यह है कि शरीर के अन्दर जाकर बहुत कम भाग बेकार जाता है, जैसे कि अनाजों और सब्जियों में होता है। इसके अतिरिक्त उचित मात्रा में पिया हुआ जल्दी पच जाता है और स्वास्थ्य तथा शक्ति को बढाता है। यही कारण है कि कि रोगियों को अधिकतर दूध पर ही डाल दिया जाता है। दूध रसायन हैं। इसके प्रयोग से रक्त मांस,अस्थि,चर्बी और मस्तिष्क बहुत बढते हैं। यह भोजन भी है और औषधी भी। अफारा के रोगी और वात कफ प्रकृति वाले इसमें इलायची या पीपली उबाल-कर, या चुटकी भर सोंठ फांककर ऊपर दूध पीयें। पित्त प्रकृति वाले बिल्कुल ताजा या औटाकर ठण्डा किया हुआ दूध पीयें दूध के साथ ही एक ही समय में खटाई, ककडी, तरबूज, सिरका खाने से रक्त बिगड जाता हैं पाचन शक्ति मन्द हो जाती है।

गाय का दूध – सौम्य है और सब पशुओं के अपेक्षा अधिक लाभकारी है। प्रत्येक आयु और प्रत्येक प्रकृति के अनुकूल है। कब्ज को दूर करता है,मस्तिष्क को विकसित करता है। हृदय और फेफडों को शक्ति देता है। सुपाच्य हैं शक्ति और यौवन को स्थिर रखता है।

बकरी का दूध :– गरम, तर और हल्का है। रोगों में लाभदायक हैं तथा रक्तशोधक हैं। रक्त को बल देता हैं और शीघ्र ही पच जाता हैं। बच्चों के बहुत हितकर हैं। खाँसी, संग्रहणी,

प्रवाहिका (मरोड), प्लीहा, यकृत, अजीर्ण, पुरानाज्वर, यक्ष्मा (तपेदिक) मानसिक रोगों तथा रक्त विकारों में बकरी का दूध लाभदायक है ।

भेड का दूध :- गरम, तर और बलवर्धक है। वात कफ और फेफडे के रोगों में तथा अश्मरी (पथरी) में लाभदायक है ।

भैंस का दूध :- तर और कफवर्धक है । सुस्ती और निद्रा लाता है । शारीरिक बलवर्धक है । रक्त उत्पादक है । शीघ्र नही पचता । कफ प्रकृति वाले चुटकी भर सोंठया पिपली फांककर पीये तो यह दूध कफ नहीं बढाता । बल बढाता है । परन्तु बुद्धि को मंद करता है । जिनकी पाचन शक्ति मन्द हो, उन्हें न दें ।

दूध को पानी की भांति नहीं पीना चाहिये । एक छोटीसी घूंट लेकर उसे शनै: शनै: स्वाद लेकर निगलना चाहिये । इस प्रकार दूध पीना बहुत ही लाभकारी सिद्ध होगा । यथा संभव खाण्ड मिलाने की भी आवश्यकता नहीं । दूध इतना गरम हो कि दूध का गिलास गाल के साथ लगाने में गाल उसे अधिक गरम न समझे । गरम दूध पीकर ठण्डे पानी से कुल्ला करना दांतों को दुर्बल करता है । दूध और भोजन के मध्य में दो-तीन घण्टे का अन्तर अवश्य होना चाहिये अन्यथा बिल्कुल एक साथ ले लें ।

दही-गरम तर, चिकना और भारी है । हृदय, मस्तिष्क और अन्तडियों को बल देता है । मन्दाग्नि, संग्रहनी, अतिसार, रक्त दोषों में दही बहुत लाभदायक है । मीठा दही कफ बढाता है, बल देता है. वात (बादी)नाशक है । खट्टा दही रक्त को उत्तेजित करता है, छाती में जलन, खांसी और जुकाम करता है, पित्त के रोगों में दही खाण्ड डालकर, कफ के रोगों में सोंठ और काली मिर्च डाल-कर, तथा वात के रोगों में सोंठ, नमक, जीरा, मिलाकर खायें ।

गाय की दही – सुपाच्य, भूख लगाने वाला, बलवर्द्धक है।

भैंस की दही - भारी है। निद्रा, चर्बी और कफ को बढ़ाता है। बकरी की दही—रोठ, हल्का, पाचक है तथा पुरानी आंतो, यक्ष्मा, श्वास, अर्श (ववासीर) को दूर करता है।

बिगडे हुये दूध की दही रक्त को बिगाडता है। दही शाम को नहीं खानी चाहिये।

छाछ :– ठण्डी और तर है। दही को मथकर तैयार होती है। यह शीघ्र पच जाती है। थोडी कब्ज करती और बलवर्द्धक है। बिना मक्खन निकाले जो छाछ तैय्यार होती है वह शरीर को मोटा करती है, परन्तु देर में पचती है। इसमे बर्फ डालने से पाचन शक्ति विगड जाती है। कफ प्रकृति वाले छाछ में सोंठ, काली मिर्च, और पिपली तीनों बराबर मिलाकर १ माशे डालकर पीयें और वात प्रकृति वाले १ माशे सोंठ तथा नमक डालकर पीये पित्त प्रकृति में खाण्ड डाल सकते हैं। छाछ का टपका हुआ पानी बडा पाचक होता है। कफ और वात के बिगाड में छाछ अच्छी नहीं। छाछ आम-ज्वर (नये बुखार) दर्द, वादी में कदापि नहीं पीना चाहिये।

मठा :– दही में चौथाई भाग पानी डालने और मक्खन निकाल देने से मठा बनता है। मठा अजीर्ण, यकृत् (जिगर) प्लीहा [तिल्ली] अर्श (बवासीर), अतिसार (दस्त) संग्रहणी तथा प्रवाहिका (पेचिस) में अमृत समान काम करता है।

मक्खन :– ठण्डा, तर, सब प्रकार की गर्मी तथा रूक्षता को दूर करता है। वृद्धों और बच्चों के लिये अमृत हैं, हृदय और मस्तिष्क को बल देता हैं। रक्त और वसा [चर्बी] को उत्पन्न करता है। गर्मी तथा रूक्षता की खांसी, अर्श, यक्ष्मा [तपेदिक] वीर्य विकार और थलथलापन को दूर करता हैं। सब प्रकृतियों के

अनुकूल है और बहुत बल देना है। नेत्रों की ज्योति बढाता है और शरीर मोटा करता है। मन्दाग्नि में बहुत हानिकारक है।

घृत :- गरम और तर है। घी शरीर को मोटा करता है। हृदय व मस्तिष्क को शक्ति पहुँचाता है, बल बढता है परन्तु जिस प्रकार बिना ज्वाला के आग पर घी डालने से आग नहीं भडकती, प्रत्युत बूझ जाती है, उसी प्रकार जिनकी पाचक शक्ति दुर्बल हो, उन्हे घी हानि पहुंचाता है, लाभ नहीं। ज्वर में नहीं खाना चाहिये जिसने विष खाया हो, जिसे साँप ने काटा हो, जिसे प्लेग हो गया हो, उसे आध पाव शुद्ध घी दो-चार बार दूध में या वैसे ही पिला देना, सब प्रकार के विषों को बहुत कुछ निकाल देता है। काली और सूखी खांसी में शुद्ध घी के सेवन से गला तर होकर कष्ट दूर हो जाता है। कफ युक्त तर खांसी और जुकाम में घी खाना मना है। नये ज्वर में घी विष का काम करता है। थोडी मात्रा में घी खाना बुढापे को दूर रखता है और रक्त शुद्ध करता है।

—o—

आंवला

संस्कृत में आंवला को धात्री फल अर्थात् जो धाय की तरह पालन करे कहा गया है। नाम से सिद्ध हो जाता है । नाम से सिद्ध हो जाता है प्राचीन काल में इसे कितना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। आमलक, आमलकी, श्रीफल, अमृतफल तथा जातीफल आदि आंवला के ही नाम हैं । आयुर्वेद और यूनानी दोनों के मतानुसार आंवला शीतल, रूक्ष, ग्राही, तृप्तिदायक, क्षुधाकारी, पित्तनाशक, शोधक, सारक होता है । अपने शीत गुण के अनुसार यह रक्त की गर्मी और पित्त के दोषों को दूर करता है । अपने रूक्ष गुण के कारण यह रक्त को शुद्ध करके उसे नया बना देता है। ग्राही होने से यह आमाशय, नेत्र और गर्भाशय को शक्तिप्रदान करता है। शोधक होने से यह मस्तिष्क, हृदय, और फेफड़ों को बल देता है । इसी गुण के कारण यह मनुष्य में मेधा, स्मृति, कान्ति, दीर्घायु आदि दिव्य गुण उत्पन्न करता है । आंवला अतिसार, प्रमेह, दाह, कामला, अम्ल-पित्त, विस्फोटक, पाण्डु, रक्तपित्त, वातरक्त, अर्श, बद्धकोष्ठ, अजीर्ण अरुचि, कफ, खांसी, दमा, क्षय, उरःक्षय, छाती के रोग, हृदय के रोग, मूत्र दोष आदि रोगों को दूर कर आंख की रोशनी बढाता है, वीर्य को पुष्ट करता है, बुढापे को दूर करता है, दीर्घ जीवन देता है तथा बालों को बढाता एवं पुष्ट करता है । इसके अतिरिक्त आंवले के से थकान मिटती है विष का प्रभावदूर होता है, टूटी हड्डी जुड़ती है । मोटापा दूर होता है पेट के अफारा और गुडगुडाहट में लाभ होता है तथा लगभग अधिकांश रोग आंवला से मिटते हैं इनो

कारण आयुर्वेद में आंवले के गुणों की बडी प्रशंसा की गई है। उस मे बताया गया है कि जिस प्रकार देवताओं में ब्रह्म, विष्णु और महेश सर्वोपरि है उसी प्रकार आंवला, हरड, बहेडा को सर्वोत्तम समझना चाहिये। आंवला अमृतफल है। यह त्रिदोष का नाश करता है। स्वस्थ शरीर को अक्षय यौवन देता है और अस्वस्थ शरीर को स्थायी स्वास्थ्य प्रदान करता है।

चाहे चरक हो या सुश्रुत, हारीत हो या वाग्भट्टसबने आंवले के स्वास्थ्यवर्द्धक गुणों का वर्णन करते हुये इसकी बहुत प्रशंसा की है। महर्षि चरक का मत है कि संसार में जितनी भी प्रभावशाली तथा रसायन औषधियां है उन सब में आंवला और हरड ये दो औषधियां सर्वोत्तम है और इनमें भी आंवले में जितने रोग निवारक, रक्तशोधक तथा वृद्धिकारक तत्त्व होते हैं उतने संसार की किसी औषधि वा वस्तु में नहीं होते। वाग्भट्टने आंवले के स्वास्थ्यवर्द्धक गुणों का वर्णन करते हुये लिखा है कि त्रिफला सर्वरोग हारी है। यही मत सुश्रुत तथा हारीत का भी है, त्रिफला में प्रधान आंवला ही होता है।

जिस च्यवनप्राश के प्राचीन काल से लेकर आजतक गुण गाये जा रहे हैं उसका आधार आंवला ही तो है। प्राचीन काल में वृद्ध च्यवन ऋषि ने च्यवनप्राश का सेवन करके पुन: यौवन की प्राप्ति की थी। वर्तमान काल में भी स्वर्गीय मदनमोहन मालवीय ने अपनी वृद्धावस्था में एक बार आंवले का कल्प किया और रासायनिक गुणों से काफी लाभ उठाया था आंवले में यही तो गुण है कि इसको किसी विधि से सेवन कीजिये च्यवनप्राश के ही गुण प्राप्त होंगे। आंवले की चटनी मुरब्बा आदि सुस्वाद होने के साथ साथ पर्याप्त रूप से गुणकारी होते हैं।

आंवला के मौसम में रोज सुबह दो पुष्ट और पके ताजे आंवलों को चबाकर खायें और जब आंवला का मौसम खत्म हो जाये तो एक तोले सूखे आवले के चूर्ण को रात को सोते समय जल के योग से लें फिर आंवले के चमत्कार को स्वयं अनुभव करें।

–o–

बुद्धिवर्द्धक ब्राम्ही बूटी

हरिद्वार, ऋषिकेश, देहरादून आदि उत्तरा खण्ड प्रदेश अथवा गंगा की गंग नहर और नहर के छोटे-छोटे रजवाये तथा गंगा नहर के जल से जिन खेतों में जल की भराई होती है। उनकी नालियों के दोनों किनारों पर ब्रह्मी बहुतायत से उगी हुई मिलती है। उक्त स्थानों से अथवा जहां कहीं भी ब्रह्मी होती हो। ब्रह्मी को उखाडकर धो ली जाये और उसमें से कूडा करकट तथा गले सडे पत्ते निकाल कर स्वच्छ कर लेवें। और इमाम दस्ते में कूटकर स्वच्छ मोटे से वस्त्र से छान कर रस निकाल लें। ऐसा ब्रह्मी का ४ सेर रस हो। तथा –

हल्दी, आंवला, सोंठ, निसोत, बडी बच, असगन्ध, मिश्री, प्रत्येक ५–५ तोले।

पीपल, वायविडंग, गंगेरन की छाल, छोटी इलायची, इलायची–बडी, प्रत्येक दो-दो तोला।

इन सबको कूट पीस बारीक बारीक स्फेद स्वच्छ वस्त्र में ढीली सी पटलिया बना लें। पुनः कढाही में वह ब्रह्मी का चार सेर रस और एक सेर शुद्ध गाय का घी डालकर मन्दाग्नि से पकावें। वह पुटलिया भी कढाही में छोड दें।

जब यह रस गर्म होगा तो इसमें दूध के समान ही बार-बार उफान आयेंगे। अतः बड़े लोहे के कडच्छे से उसे चलाते रहे। न तो वह उफन कर नीचे गिरने ही पावे। और न ही कढाही में लगने ही पावे। अर्थात न तो उफन बाहर गिरे और न वह जले

ही। धीरे-धीरे मन्दाग्नि से उसे पकाते रहें। जब उसका सब पानी जल जाये और घृत मात्र हो शेष रह जावे। तब उसे अग्नि से नीचे उतार लें। उसमें पानी का अंश न रहने पावे। नहीं तो वह कालान्तर में विकृत हो जायेगा। और जलने भी न पाये।

उसमें पानी है या नहीं ? इसकी पहचान यह है कि जब जल समाप्त होने लगता है तब भी उफान बार-बार आयेंगे। और उसमें कोई शुद्ध तिनका आदि डालकर अग्नि में छिडकने से यदि पानी होगा तो चिड-चिडाहट होगी। और पानी न होगा तो वह छिडके हुए बिन्दु घी की तरह ही जल जायेंगे। इस विधि से यह ब्राह्मी घृत बनकर तैयार हो जाता है। इसको सारस्वत घृत भी कहते है यह घृत अब अमृतमय ही हो गया। और यह रसायन है।

वह पुटलिया घी निचोड कर बाहर निकाल दें। वह हवन सामग्री मे मिलाकर अग्नि में जलाने पर घर का वायु मण्डल शुद्ध हो जायेगा। पुनः ठण्डा होने पर घी को छानकर शीशे आदि के शुद्ध अमृतवान आदि पात्र मे रख लीजिये।

इसको मात्रा ३ माशे से २-२॥ तोले तक—गाय के गर्म दूध मे मिलाकर प्रातः और सायं रात्रि में सोने से १५-२० मिनट ले लेवें। दूध १ या १॥ पाव तक हो। दूध में मिश्री मिला लेवें। एक कटोरी में थोडा-सा दूध डालकर उसमें यह घृत मिलाकर पी जावें और पुनः शेष दूध पी लें। तथा दूसरा प्रकार यह भी है कि बूरे में मिलाकर भी सेवन किया जा सकता है। प्रकार चाहे कोई भी क्यों न हो ! सेवन अवश्य ही कीजिये।

सेवन से पूर्व उदर शुद्धि अवश्य ही कर लीजिये। क्योंकि रसायन औषधि के सेवन करने से पहिले किसी अनुभवी अच्छे वैद्य के परामर्श पर—वमन तथा विरेचन द्वारा आमाशय व पक्वाशय युक्त

उदर की भली भांति शुद्धि कर लेनी चाहिये। शुद्ध उदर में सेवन की हुई रसायन औषधियां अधिक लाभदायक सिद्ध होती हैं। इस ब्राह्मी घृत के सेवन से बुद्धि की वृद्धि और विकास होता है। कण्ठ मधुर–सुरीला हो जाता है। मस्तिष्क की दुर्बला नष्ट होती है २० प्रकार के प्रमेह १८ प्रकार के कुष्ट, ६ प्रकार का अर्श (बवासीर) ५ प्रकार की खांसी, ५ प्रकार के उदर शूल, वायु गोला आदि अनेक प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। अधिक क्या कहें –

इस ब्राह्मी घृत् के सेवन से बल बुद्धि तेज आदि की वृद्धि होकर सेवन करता पूर्ण मेधावी बन जाता है। स्मरण शक्ति की वृद्धि होतो है। विधि पूर्वक बनाकर सेवन कीजिये और लाभ उठाइये।

घी बनाने का दूसरा प्रकार यह भी है कि यदि ताजा गीली ब्रह्मी का स्वरस प्राप्त न हो सके तो पुन: एक सेर सूखी ब्रम्ही को लेकर १६ सेर पानी में रात भर भिगोय रखें। पुन: उसका क्वाथ बना लें। गर्म करें और जब चतुर्थांश पानी रह जाये तब उतार कर छान लें। यह भी ब्रम्ही का रस ही कहलाता है। इस रस में उक्त प्रकार से एक सेर गाय का घी तथा उन औषधियों को पुटलिया बना कर उक्त विधि से ही घी बना लेवें। सर्वोत्तम तो हरी ताजा ब्रम्ही के रस का ही घी होता है। किन्तु अभाव में इस प्रकार भी ब्राम्ही घृत बना सकते हैं।

ब्राह्मी घृत के अभाव में दूसरा प्रकार यह भी है ?

सूखी नवीन ब्राम्ही का कपड छान चूर्ण १० तोले, १० तोल खशखश बारीक पीसकर। १० तोले चार बीज (खीरा, खरबूजा, ककडी और कद्दू के बीज) छोटी इलयची के बीज ३ तोले, वंशलोचन २ तोले, काली मिर्च २ तोले, बादाम का तेल १०–१२ तोले

मिश्री यथा योग्य बच ४ तोले।

विधि--सबको स्वच्छ करके बारीक पीस लें। और ६ मासे में एक तोला तक मात्रा के मिश्री मिले हुये गर्म दूध के साथ सेवन करने से बुद्धि का विकास और मस्तिष्क बल की वृद्धि होगी। उत्तम योग हैं इनसे लाभ उठा सकते है।

—०—

हरिद्रा के शास्त्रीय प्रयोग

पर ब्रह्म परमेश्वर की असीम कृपा का फल हमारे ऋषि प्रवरों का ध्यान इस वनौषधि की ओर गया और उन्होंने इसका विधिवत् अध्ययन किया तथा अध्ययन और अन्वेषण के आधार पर हमें जो योग प्रदान किया है वह सद्यफलप्रद है। यह ईश्वर की हम पर असीम कृपा है कि हमें आज इसका विभिन्न रूपोंमें प्रयोग करने का सौभाग्य प्राप्त है तथा इसके नामकरण में भी बड़ी खूबी दिखाई है। यथा – हरे जो दरिद्रता को सो हरिद्रा कहावे।

हरिद्रा एक प्रसिद्ध वस्तु है। जो नित्यप्रति दाल शाक एवं औषधि तथा मांगलिक कर्मों में व्यवहृत होती है। अतः इसको सभी अच्छी प्रकार से जानते हैं। इसका प्रयोग औषधि रूप में बहुत होता है। यह निम्न रुपों में दवा ली जाती है – १ कषाय क्वाथ, २ अर्क, ३ वर्ति, ४ अवलेह, ५ चूर्ण, ६ तैल, ७ घृत, ८ धूम, ९ नस्य, १० क्षार सूत्र, ११ लेप के रूप में।

१, हरिद्रादि कषाय–हल्दी, दारुहल्दी, मुलैठी, कटेली और इन्द्र जौ समप्रमाण में लेकर क्वाथ विधि से क्वाथ तैय्यार कर प्रयोग करें। यह बालकों के ज्वरातिसार तथा स्तन्यदोष को नष्ट करता है।

२, अर्क हरिद्रा–हरिद्रा का मोटा कुटा चूर्ण १ भाग और शराब ६ भाग मिलाकर ७ दिन बोतल में रख देवें फिर फिल्टर पेपर से छानकर रख लेवें इसकी मात्रा १–२ ड्रम है। इसको रक्त शोधनार्थ दिन में ३ बार जल के साथ सेवन करावे। यह अर्क कफ

प्रमेह, मूत्रदाह, जुकाम, कफ काम्म, और श्वेत प्रदर आदि में हितकारी है।

३. वर्ति हरिद्रा–हरिद्रा नीम के पत्ते, छोटी पीपल, काली मिर्च, वायविडग, नागरमोथा, एवं सोंठ इन औषधियों को सम भाग लेकर कूट कपड छानकर गोमूत्र में १२ घंटे खरल कर वर्ति बना लें। इस वर्ति को जल शहद वकरी के दूध में धिसकर सेवन करना चाहिये। आंखों की स्वच्छता एवं मल स्राव के लिये शहद के साथ प्रयोग करें तथा दाह एवं वेदना शान्ति के लिये बकरी का दूध प्रयोग करें। किन्तु जल सर्व समय उपलब्ध रहता है। अतः अन्य अनुपान मिलनें पर पानी का प्रयोग न करें। इसमें नेत्र की पीडा लाली, खुजली, नेत्रदाह, नेत्र में जाला उत्पन्न होना, मल आना आदि में गुणकारी है।

४. दरिद्रा अवलेह–हरिद्रा मुनक्का, काली मिर्च पिप्पली रास्ना और शटी ये सभी औषधियों सम प्रमाण में लेकर कूट पीस कर सबके वजन के बराबर का आधा गुड मिलावें यथा यदि ये सब दवायें १। २ किलों हो तो १ पाव गुड होना इसको १ तोला की मात्रा मे सरसों (कडू) तैल के अनुपान से दिन में तीन बार चढायें। इसमें कफ प्रकोप अन्य श्वास शान्त हो जाता है। तथा कफ बनना रुक जाता है। यह अवलेह हिक्का में भी लाभ प्रद है।

५. चूर्ण हरिद्रा–हल्दी के ३–४ माशे चूर्ण को गुड मिला–कर गोमूत्र के साथ सेवन करने से १ वर्ष का श्लीपद और दाद कुष्ठ रोग नष्ट होते है। परन्तु यदि कोई कहे कि मैंने इतने दिनों तक खाया कोई लाभ नाहीं अतः उनसे निनेदन है कि वे इसको लगातार दिनों में नही महीनों में सेवन करें तब पूर्ण लाभ की आशा करें।

६, तैल हरिद्रा–हरिद्रा, आक दूध, सैंधानमक, चीता गूगल कनेर की जड और कूडे की छाल इन सबका मिश्रित कल्क १३ तोला ४ माशे क्वाथ तैय्यार ८ सेर तथा २ सेर तैल से तैल तैय्यार करके भगन्दर उपदंश में प्रयोग करें।

७ घृत हरिद्रा–इस घृत का प्रयोग करने से कामला से छुटकारा शीघ्र प्राप्त होगा मात्रा १ से २ तोला तक सामर्थ्यानुसार

८ धूम हरिद्रा – हरिद्रा, दारु हल्दी, और मैन सिल इनको समान भाग लेकर जल से पीसकर छोटी २ वर्ति बनालें तथा आग से जलाकर बीडी की तरह इसका धूंवा पीवें इससे संग्रहीत कफ बाहर निकलकर छाती हल्की हो जाती है श्वास में राहत आती है।

९. क्षार सूत्र--हरिद्रा के चूर्ण में सूहर का दूध मिलाकर उस से सूत का डोरा भिगोकर इस डोरे को मस्से बवासीर के में ५ से ७ बार लपेटकर बांध देने से मस्से गिर जाते हैं।

१०. लेप हरिद्रा–इसका प्रयोग सौन्दर्य के रूप में उबटन में किया जाता है तथा खाज, खुजली, दाद में भी किया जाता है।

११. हरिद्रा खण्ड – इसकी निर्माण विधि पुस्तक में देखे या बना–बनाया दवा की दुकान से खरीदा भी जा सकता है। यह शीत पित्त के लिये बहुत ही लाभकारी है। इसकी मात्रा १ तोला तक है।

इस प्रकार से हरिद्रा नाम की यह प्रसिद्ध कन्द अतीव गुणकारी होते हुये भी अज्ञानता वश केवल दाल शाक आदि में ही सेवन होते हैं। इसे साधारण न समझकर विधिवत् पथ्य से कुछ दिन लगातार इसका सेवन करना चाहिये।

–०–

हरिद्रा के प्रयोग

हरिद्रा एक प्रसिद्ध वस्तु है। जो नित्य प्रति दाल शाक एवं औषधि तथा मांगलिक कर्मों में व्यवहृत होती है। अतः इसको सभी अच्छी प्रकार जानते है। आजकल हरिद्रा का प्रयोग बहुतायत से हो रहा है। जो निम्न प्रकार से है :–

१. मसाला-इसका प्रयोग प्रचुर मात्रा में इस रूप मे किया जाता है। क्योंकि घरों मे प्रतिदिन दाल, कढी, बेगन, मिठाई आदि मे प्रयुक्त होती है।

२, मांगलिक कार्यों मे भी इसका प्रचुर प्रयोग होता है।

३. रंग के रूप मे–इस रुप में बहुत प्रयोग होती है।

४, औषधि रूप में –इसका प्रयोग औषधि रुप में बहुत होता है। यह निम्न रूपों में दवा में ली जाती है। १ – कषाय क्वाथ, २. अर्क, ३. वर्ति, ४. अवलेह, ५, चूर्ण, ६. तैल, ७. घृत, ८. धूम, ९. नस्य. १०. क्षार सूत्र, ११. लेप के रूप में।

अब हरिद्रा के कुछ सरल एवं आंश फल प्रद योग प्रस्तुत किये जाते है।

१. जुकाम एवं हरिद्रा (ए.) नये जुकाम में हल्दी एवं सोंठ का चूर्ण तथा गुड डालकर मीठा किया हुआ दूध गरम सुबह शाम सोते समय पीना चाहिये इससे शीघ्र पककर शान्त हो जायेगा।

(बी) यदि पतला जल जैसा स्राव होता है। इसका चूर्ण निधूम में डालकर धूआं का प्रयोग करना चाहिये। इसमें सब श्लेष्मा

निकलकर मस्तिष्क हलका हो जयेगा

२. चोट एवं हरिद्रा – चोट में हरिद्रा का प्रयोग खाद्य एवं लेप रूप मे किया जाता है। जो इस प्रकार है लेप रूप में – हरिद्रा को जल में पीसकर तथा पान मे लगाने का चूना दोनों मिलाकर आग से गर्म करके चोट के स्थान पर लगाने से पीडा एवं सूजन हट जाती है तथा तकलीफ शान्त हो जाती है।

३. खाद्य रुप में – हरिद्रा चूर्ण को दानेदार शक्कर के साथ देने से रुधिर का जमाव बिखरकर रक्त संचालन क्रिया तुरन्त हो जाती है।

४. कफ खाँसी एवं हरिद्रा–धूम्र हरिद्रा का प्रयोग करें अथव हरिद्रा अर्क का सेवन करें।

५, घाव एवं हरिद्रा–हरिद्रा का चूर्ण घाव में छिडके तो शीघ्र भर जायेगा।

६, उदर कृमि एवं हरिद्रा–हरिद्रा का चूर्ण करके नारियल की गिरी के साथ खाने से समस्त उदर कृमियों मे लाभ पहुचाती है तथा स्थायी रूप से ८ दिन मे कृमियों का सफाया कर पेट को कृमिरहित कर देती है : ऐसी इस मिश्रण में प्रबल शक्ति है।

७. प्रमेह एवं हरिद्रा–कच्ची हरिद्रा का रस और शुद्ध शहद १–१ तोला चटाना चाहिये इससे धातुविकार तथा प्रमेह नष्ट हो जाता है।

८, कामला एवं हरिद्रा–४-से ८ माशे तक हरिद्रा का चूर्ण (हल्दी पिसी) को मट्ठें में मिलाकर दिन में दो बार सेवन करे तथा भोजन में चावल दही या चावल मट्ठा लेते रहने से ४-५दिन में कामला नष्ट हो जाता है।

९. दांत एवं हरिद्रा – पिसी हरिद्रा एवं हींग को दर्द वाले

दांत में दबाने से दर्द एवं कृमि नष्ट हो जायेंगे।

१०. चर्म विकार एवं हरिद्रा – हरिद्रा, एहुड, अमलतास १-१ छटांक तथा १ पाव पमाड बीज पीसकर १ किलो मट्ठे में डालकर उस बर्तन का मुख बन्द करके रख दें। ३ दिन के बाद प्रयोग करें। ५-७ दिन के लगाने से खाज खुजली एवं चर्म विकार शान्त होते हैं।

११. मूत्र विकार एवं हरिद्रा– हरिद्रा का पिसा छना चूर्ण ३-५ माशे तक गिलोय का ताजा रस १ तोला तथा शहद मिलाकर सेवन करने से मूत्र की गर्मी एवं जल शान्त होकर पेशाब साफ आता है।

इस प्रकार से हरिद्रा नाम की यह प्रसिद्ध कन्द अतीव गुणकारी है। अतः इसे साधारण न समझकर विधिवत् इसका सेवन करना चाहिये।

–०–

धनियां के प्रयोग

१. नवीन ज्वर में धनियां १ तोला, सोंठ ६ माशा का क्वाथ बनाकर देनें से ज्वर के दोषों का पाचन होकर ज्वर नष्ट हो जाता है ।

२. मूत्र मे -- किसी कारण रुकावट हो तब धनिये का क्वाथ पिलाने से मूत्र ठीक प्रकार आने लगता है ।

३. हरे धनिये की चटनी बनाकर खाने से भोजन में रुचि उत्पन्न होती है और भूख भी ठीक प्रकार लगती है ।

४. शौच पतला और शौच में आम आती हो तब धनिये २ तोले का क्वाथ देने से लाभ होता हैं ।

५. बच्चों को जब पेट में कृमि हो जाते है तब धनिये का चूर्ण बनाकर थोडी थोडी मात्रा में आम्र के आचार में देने से कृमि नष्ट होते हैं और शौच की दशा ठीक होने लगती है ।

६. कास रोग पर धनियां और मुलहठी का क्वाथ देने से लाभ होता हैं ।

७. हृदय रोग पर धनिये का विशेष गुण होता है । किसी प्रकार भी हृदय रोगों को धनियां और खण्ड या मिश्री सहभाग मिलाकर देने से हृदय की सब प्रकार की बैचेनी दूर होती है ।

८. वातरक्त में धनियां जीरा सफेद, जीरा काला सम भाग लेकर सबके समान गुड मिलाकर प्रयोग करने से वातरक्त दूर होता है ।

९. बच्चों की खांसी और श्वास पर १।। माशा धनिये के चूर्ण में उतनी ही खाण्ड मिलाकर फांककर ऊपर से साठी चावलों का पानी पीने से बच्चों की श्वास कास दूर होती है।

१०. धनियां १।। तोला, दूध पाव भर, मिश्री १ तोला। धनिये को कुचल कर मिश्री के साथ खौलते दूध में डाल दें। दूध पक जाने पर छान लें फिर रोगी को पिलादें यह पाचक और अनुलोमक है अर्श रोग के कारण होने वाले अनाह पर बडा लाभ प्रद है।

विशेष :– कच्चा धनियां व्यंजनादि भोजनों में प्रयोग करने से उनमें स्वदुता सुगन्धि उत्पन्न करता और हृदयको बल देता है किन्तु वही सूखा और पका धनियां पाक में मधुर स्निग्ध तृषा और दाह को दूर करता है। वह त्रिदोष शामक हुआ और किंचित् तिक्त होता है और स्रोतों का शोधक है। धनियां कास तृषा छर्दि ज्वर और नेत्र रोगों मे हितकारी है। यह भोजन में रुचि उत्पन्न करता और अग्नि को दीपन करता है।

–०–

पोदीना के प्रयोग

१. शीतज्वर तथा सामान्य ज्वर-पर पोदीना और अदरख दोनों का एक एक तोले स्वरस निकालकर पिलावें।

२. वात दोष तथा कृमि रोग पर पोदीना का स्वरस १ तोले से २ तोले तक पिलावे।

३. प्रतिश्याय आदि रोगों पर पोदीना के स्वरस की १-२ बून्द नाक में डालने से जुकाम रुका हुआ शीघ्र झडना प्रारम्भ हो जाता है पीने से कृमि भी मर जाते हैं।

४. अतिसार कास पर पोदीना का स्वरस १ तोले तक दें।

५. उदर शूल पर-पोदीना का रस ६ माशे लाहौरी नमक १ माशे मिलाकर पिलावें।

६. बिच्छू के काटने पर पोदीने का रस ६ माशे. पान का रस ६ माशे मिलाकर पिलावें। अथवा पोदीना के पत्ते पान रखकर खिलावे और काटे स्थान पर लगावे

७. अरोचक नाशक चटनी-पोदीना, छुहारे का बक्कल, मिर्च काली लाहौरी नमक, हींग हीरा का फूला, मुनक्का बीज निकाले जीरा सफेद भूना हुआ इन सबको यथायोग्य लेकर नींबू का रस डालकर चटनी बनालें। इसके प्रयोग से भोजन की अरुचि नष्ट होती है।

८. मन्दाग्नि वालों के लिये और भोजन में अरुचि होने पर शर्बत पोदीना का प्रयोग है वह इस प्रकार है – पोदीना का

स्वरस २ छटांक, अदरक का रस ३ छटांक, नींबू का रस ४ छटांक मिलाकर मिश्री १ सेर २ छटांक मिलाकर इसकी एक तार की चासनी चीनी के पात्र में बनावे, फिर शीशी मे सुरक्षित रख ले और प्रयोग करावे।

विशेष-पोदीना का प्रयोग अनेक प्रकार से होता है। भोजन के साथ चटनी, रायता, शर्बत आदि बनाकर इसका प्रयोग होता है। संस्कृत में इसको पूतिहा, पोदीनक, पुदिन, रोचनी आदि नाम कहे गये हैं इसको तीक्ष्ण पत्र भी कहते है क्योंकि इसके पत्रों में तीक्ष्णता विशेष होतीं हैं।

—०—

नीबू के प्रयोग

भारत वर्ष में होने वाले फलों में नीबू का भी एक विशिष्ट स्थान है। इसका उपयोग आहारोपयोगी एवं औषधोपयोगी द्रव्य के रूप में प्रसिद्ध एवं प्रचलित है। यह भारतनर्ष के लगभग सभी प्रदेशों में उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त यह हिमालय की उष्ण घाटियों में भी जंगली जाति के रूप में उत्पन्न होता है। भारतवर्ष के अतिरिक्त वर्मा, बंगाल आदि स्थानों में बहुतायत से मिलता है। इसके वृक्ष छोटे होते हैं जिन पर कांटे होते हो हैं। पत्ते १ से १॥ व्या।स के होते हैं। कच्ची अवस्था में हरे रंग के एवं पकने पर पीले रंग के हो जाते हैं। भारत वर्ष में इनकी कई जातियां पाई जाती हैं। जैसे चकोतरा नीबू,जम्बीरी नीबू आदि।

नीबू के प्रयोग करने से वात, पित्त एवं कफ तीनों दोषों से उत्पन्न व्याधियां दूर हो जाती हैं। यह प्यास को शान्त करने वाला, भोजन के प्रति रुचि उत्पन्न करने वाला, पाचक, अग्नि को बढाने वाला, मूत्र की मात्रा बढाने वाला और कफ को निकालने वाला होता है। इसका प्रयोग उल्टी होने पर. प्यास अधिक लगने पर, भोजन के प्रति अनिच्छा होने पर, खांसी में, उदर में, कृमि होने पर, साधारण बुखार आदि में प्रयोग करने से लाभ होता है। इसके अतिरिक्त इनके अनुभूत प्रयोग निम्न है –

१. चाय में दूध के स्थान पर नीबू का रस मिलाकर पीने से सिर दर्द नष्ट हो जाता है।

२. नीबू के छिलके को पीसकर माथे पर लेप करने से भी सिर दर्द नष्ट हो जाता हैं।

३. नीबू को भीगों कपडे में लपेट कर ऊपर से चिकनी मिट्टी का लेप कर अग्नि में भून लें। जब वह अच्छी प्रकार से पक जायें तो मिट्टी एवं कपडे को अलग कर, नीबू का रस निकालकर गर्म गर्म पिलानें से जुकाम दूर हो जाता है।

४. यात्रा में चक्कर आने एवं जी मिचलाने पर नीबू को चूसने से तुरन्त हीं लाभ होता है।

५. नाक से रक्त निकलने पर नीबू के रस का स्थानक प्रयोग करने से लाभ होता है।

६. कोडी को तीव्र अग्नि में जलाकर भस्म कर लें। १-१ डेका ग्राम भस्म कान में डालकर ऊपर से नीबू के गर्म रस को ७-८ बुन्द छोडे।

७. मुख के छालों में ताजा नीबू का रस गर्म पानी में मिला कर गरारा करने से मुख के छाले ठीक हो जाते है।

८. मुख में दुर्गन्ध आने पर नीबू का ताजा रस १ भाग, अर्क गुलाब २ भाग दोनों मिलाकर २-३ बार गरारा करने से मुख से दुर्गन्ध आना दूर हो जाता है।

९. पीलिया (कामला) रोग में चीनी के शर्बत में रस मिलाकर पीने से पीलिया रोग दूर होने के साथ ही हाथ पैरों की जलन भी दूर करता है।

१०, इनके अतिरिक्त भोजन के साथ नीबू के प्रयोग करने से क्षुधा बढने के साथ ही पाचक भी भली प्रकार होता है।

—०—

नीम के प्रयोग

१. नीम के पत्तों को घी में जलाकर महीन पीस लें। फिर उसको ऐसे फोडों पर लगावें जो शिथिल पड गये हों। ऐसे फोडों में इसके लगाने से आराम होता है।

२. बहुत समय तक ~~नीम के~~ नीम के पेड के नीचे रहने से, उसकी लकडी में की हुई रोटी खाने और नीम का सेवन करने से भयानक कोढ भी अच्छे हो जाते हैं।

३. प्लेग से बचने के लिये मकान के अन्दर हरी नीम की पत्तियां जलाकर धूंआं करने से प्लेग का भय नहीं रहता।

४. नीम की पत्तियों को पानी में पकाकर कान में भाप देने से कान का दर्द मिट जाता है, और मैल भी साफ हो जाता है।

५. यदि पेट में कीडे पड गये हो तो नीम की कोंपल को बैंगन के साथ बनाकर खाने से कीडे मर जाते है।

६. नीम का तैल सिर में लगाने से जुवां तथा अन्य रोग नष्ट हो जाते हैं।

७, बिगडे घाव पर नीम का तैल लगाने से आराम मिलता है।

८. शरीर की खाज पर नीम के तेल की मालिश करने से खाज दूर हो जाती है।

९. बडी शीतला निकल आने पर नीम का तैल लगाने से आराम मिलता है।

१०. नीम की कोपलों को खाने से पेट के सभी दर्द नष्ट हो जाते है।

विशेष :- नीम की पत्तियां, ठहनियां, छाल, फूल, गोन्द, बीज यह सभी चीजे काम लाई जाती हैं। प्रत्येक वस्तु के अलग-अलग गुण होते है। नीम वृक्ष से एक प्रकार का दूध निकाला जाता है। जो बडा ही उपयोगी होता है। नीम के बीजों का तैल निकाला जाता है। यह शीतल, कडवा, कै, कृमि, सूजन अनेक प्रकार के पित्त दोष और विशेषकर हृदय की दाह को शान्त करता है। नीम हल्की खांसी, ज्वर दांत, कुष्ठ रुधिर विकार प्रमेह आदि रोगों को दूर करता है और पाचन शक्ति को बढाता है। कच्ची निबौली कृमि को नष्ट करती है। पक्की निबौलीं क्षय रोगों को दूर करती है। नीम की पत्तियां विष को नाश करने वाली होती हैं। तैल कुष्ठ रोग का नाश करता है। फूल पित्त का नाशक है। पतली शाखायें गुल्म को दूर करती हैं। नीम की दातौन उत्तम मानी है।

—०—

तुलसी की महिमा

प्राचीन ग्रन्थकारों ने तुलसी की महिमा को सर्वसाधारण के हृदयों में जमाने के लिये उसकी बडी प्रशंसा की है और उसके अनेक लाभ बतलाये हैं। इनमें से शरीर संबन्धी गुण अर्थात् तुलसी रोगनाशक शक्ति तो प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष ही हैं। आयुर्वेद के सभी ग्रन्थों में अनेक व्याधियों में तुलसी को लाभकारी बताया हैं। और विशेषतः कफ खांसी ज्वर संबन्धी ओषधियों के साथ तुलसी को भी सम्मिलित करने का विधान हैं। भारतीय चिकित्सा विज्ञान में सबसे प्राचीन और मान्य 'चरक संहिता' में तुलसी के गुणों का वर्णन करते हुये कहा गया है :-

हिक्का कास विषश्वास पार्श्वशूलविनाशिनः।
पित्तकृत् कफवातघ्नः सुरसः पूति गन्धहा ॥

अर्थात् सुरसा (तुलसी) हिचकी, खांसी, विष विकार, पसली के दर्द को मिटाने वाली हैं। इससे पित्त की वृद्धि और दूषित कफ तथा वायु का शमन होता है। यह दुर्गन्ध को भी दूर करती हैं। दूसरे भी प्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाश में कहा गया हैं :-

तुलसी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तकृत्।
दीपना कुष्ठ कृच्छत्र पार्श्वरुक् कफ वातजित् ॥

तुलसी कटु, तिक्त, हृदय के लिये हितकर, त्वचा के रोगों में लाभदायक पाचक शक्ति को बढाने वाली, मूत्रकृच्छ्र के कष्ट को मिटाने वाली हैं। यह कफ और वात संबन्धी विकारों को ठीक करती है।

आयुर्वेद के ज्ञाताओं ने समस्त और जड़ी बूटियों के गुण जानने के लिये निघण्टु ग्रन्थों की रचना की है। उसमें तुलसी के गुण विस्तार पूर्वक लिखे गये हैं। धन्वन्तरि निघटु में कहा गया है -

तुलसी लघूष्णा चा रुक्षकफविनाशिनी।
क्रिमीदोषं निहन्त्येषा रुचिकृद् वन्हिदीपनी ॥

" तुलसी हलकी, उष्ण, रुक्ष, कफ दोषों और कृमिदोषों को मिटाने वाली और अग्निदीपक होती है। 'दूसरे राजवल्लभ निघण्टु' में कहा गया है। –

तुलसी पित्तकृत् वाता क्रिमी दौर्गन्ध्यनाशिनी।
पार्श्वशूलारतिश्वास काम हिक्का विकारजित् ॥

तुलसी पित्तकारक तथा वात कृमि और दुर्गन्ध को मिटाने वाली है। पसली के दर्द, खांसी, श्वास, हिचकी आदि में लाभकारी है।

कैथदेव निघण्टु में तुलसी के गुणों का इस प्रकार वर्णन किया है –

तुलसी तु वा तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कटुपाकिनी।
रुक्षा हृद्या लघु कट्वी दाह पित्ताग्नि वर्धिनी ॥
जयेद् वात कफ श्वास कास हिध्मा वमि कृमीन्।
दौर्गन्ध्य पार्श्वरुक् कुष्ठ विष कृच्छ्र नस्राहगंद: ॥

तुलसी तीक्ष्ण, कटु, कफ, खांसी, हिचकी, उल्टी, कृमि, दुर्गन्ध पार्श्व, कोढ, आंखों की बीमारी आदि में लाभकारी है।

इस प्रकार आयुर्वेदिक ग्रन्थों में तुलसी की महिमा का वर्णन किया है। इसका यथोचित लाभ उठाना चाहिये।

—o—

शहद का महत्व

गंगाजल के सम्बन्ध में मान्यता है कि वर्षों तक रखा रहने पर भी वह सडता नहीं। इस दृष्टि कोण से शहद भी एक ऐसी पवित्र वस्तु है जिसमे कभी सडांद उत्पन्न नहीं होती, इस प्रकार यह शरीर में पैदा होने वाली सडांद को रोकता है फल आदि वस्तुओं को इसमें सुरक्षित रखा जा सकता है। शदह में सडांद को रोकने और रोग कीटाणुओं को नाश करने की शक्ति विद्यमान है इसे भोजन में सर्वोत्तम सर्वोतम सर्वश्रेष्ठ और पवित्र स्थान दिया है। हमारे पूर्वज शहद के गुणों से परिचित थे।

शहद या मधु को जो महत्ता प्राप्त है वह आधुनिक वैज्ञानिक विश्लेषणों के फल स्वरूप नहीं अपितु आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व समस्त संसार के धर्मशास्त्रों ने इस उपयोगिता को स्वीकार कर लिया था। भारत के बडे बडे कविराजों का अनुभव है कि जो नित्यप्रति तुलसी और मधुमय पंचामृत का सेवन करते है, उन पर राज यक्ष्मा अथवा तपेदिक का आक्रमण नहीं होता वे बहुत से रोगों से बचे रहते हैं। वैद्यक में मधु को योगवाही माना है अर्थात् मधु जिस योग के साथ मिला दिया जाय उस योग का प्रभाव उससे दुगुना हो जाता है। परिमाणतः मधु सभी दवाओं में सभी प्रकृति के मनुष्यों के लिये उपयोगी है।

मधु कोई बहुमूल्य दुर्लभ वस्तु नहीं है साधारण मनुष्यों के लिये वह भी शुद्धरूप में सुलभ हो सकता है। वे चाहे तो बडी सुगमता से मधु मक्षिकाओं को अपने घरों में पाल पोसकर उनसे मधु

वैसे ही प्राप्त कर सकते हैं, जिस प्रकार से अपने यहां गौ और बकरियों को पालकर उनसे दूध लेते हैं। ऋग्वेद में मधु का महात्म्य वर्णित है। यथा :—

मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।
मधु नक्तमुतोषसः। मधुमत्पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिः।
मधुमां अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।

हम सत्य की खोज करने वालों के लिये — वायु मधुर बने, नदियों से हमें मधुर जल प्राप्त हो, औषधियां मधुरता से परिपूर्ण हो रात प्रातः और सन्ध्या मधुरता का संसार करे। धरती का प्रत्येक रजकण मधुमय हो। आकाश जो पितास्वरूप है दूध की वर्षा करे। वृक्षों से मधुमय फल मिले, सूर्य मधु का प्रसार करे और गायें हमें मधु मिश्रित दूध दें। यह है मधु के महात्म्य का वर्णन ऋग्वेद मे जिस मधु के पान के लिये देवता भी लालायित हों उसके बारे में आज हम सब कुछ भूल बैठे है यह हमारा दुर्भाग्य नहीं तो क्या है? केवल भारतीय संस्कृति में ही मधु की महानता का उल्लेख या वर्णन नहीं है अपितु इस अमृत तुल्य, सुवासित महौषधि की प्रशस्ति में संसार के अन्यान्य अनेक धर्मग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। बाईबिल और कुरान में इसका गुणगान किया है।

औषधि रुप में मधु हानि रहित, मृदु विरेचक और कफ निस्सारक है। इसकी मात्रा शिशुओं के लिये ६ माशा, बालकों के लिये ८ माशा और युवकों के लिये सवा तोला उचित है। जो जन नित्य प्रति मधु का आहार करते है वे अपने शारीरिक और मस्तिष्क में कार्यकारिणी शक्ति की वृद्धि करते है। जो बालकों को रोगों से सुरक्षित रखना चाहें उनको चाहिये वे भूलकर भी उनको खाण्ड,

मिश्री, गुड न दें। जब आवश्यकता हो मधु को ही अकेला या गाय और बकरी के दूध में मिलाकर पिलायें। मधु का प्रयोग करने वालों को जुकाम कभी नहीं होता। मधु एक उपयोगी वस्तु है।

—o—

दन्त मंजन

सुश्रुत संहिता चिकित्सा स्थान अध्याय २४ में दातौन न करने की कुछ अवस्थायें बतलाई गई हैं। कि गला, तालु, ओष्ठ, और जिव्हा रोग के उत्पन्न होने पर मुख पाक, श्वास कष्ट, कास, हिक्का और वमन से दुर्बल, अजीर्ण पर भोजन करने वाले, मूर्च्छा, नशा एवं शिरोरोग से पीडित, प्यासा, थका हुआ, सुस्ती युक्त अर्दित, कर्णशूल एवं दन्त रोग वाले मनुष्य को दातौन न करनी चाहिये। नवज्वर, नेत्र रोग तथा हृदय रोग से पीडित मानव भी दातौन न करे। इन अवस्थाओं में जब मनुष्य को दातौन करना निषेध होता है तो उस अवस्था में दन्तों की रक्षा की जा सकती है। दातौन के अभाव में प्रयुक्त होने वाले दन्त मन्जनों को बनाने और प्रयोग करने विधियां हम दे रहे हैं।

१, मधु, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड; बहेडा, आंवला, विडंग, नामकेसर, चित्रक, तेल, सेंधानमक और मालकांगनी के चूर्ण से दन्त मंजन करना चाहिये।

२. मधु, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, दालचीनी, तेजपात, तेल, सेंधानमक और तेजबल के चूर्ण से दन्त मंजन करना चाहिये।

३. रास्ना, माल कांगनी, कपूर कूठ, गोरोचन, वच कफूर और शीतलचीनी, के चूर्ण से दान्तों को शुद्ध करें।

४. आंवला, हरड, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, माजूफल, तूतियाभस्म प्रत्येक १०–१० ग्राम लेकर कपड छानकर शीशी भर

लें। इस मंजन से दांत वज्र के समान मजबूत हो जाते हैं तथा दांतों का कोई रोग नहीं होने पाता है।

५. सोंठ, हरड, नागर मोथा, कत्था, कपूर, सुपारी भस्म, काली मिर्च, लवण, और दालचीनी प्रत्येक १–१ तोला लेकर कपड छान चूर्ण कर ले। इस मंजन से दांत तथा मुख की अनेक व्याधियां नष्ट होती हैं।

६. कूठ, दारुहल्दी, लोध, मोथा, वहारकान्ता, आक, चव्य हल्दी इन सब का मंजन बना लेते। इस मंजन का प्रयोग करने से दन्तगत रक्तस्राव बन्द हो जाता है एवं दर्द में आराम मिलता है।

७. सुर्ती, चिकनी सुपारी, पीपरी खैर, हरड मरीच, तूतिया भस्म प्रत्येक – १–१ तोला कपड छन कर रख ले यह दान्तों को रक्षार्थ सर्वश्रेष्ठ मंजन है।

—o—

मलावरोध

मलावरोध शब्द मल अवरोध दो शब्दों का योग है। मल, अर्थात् वह विजातीय पदार्थ जिसे हमारी भोजन प्रणाली अपने शरीर में घुला मिला न सकी और वह मलरुप में कडी आंत्र में अव-रोध अर्थात् रुककर सडने लग जाय इस दशा को कब्ज की संज्ञा दी जाती है। यहीं सब रोगों की जड है जैसा आयुर्वेद शास्त्र बताता है –

रोगाः सर्वेऽपि मन्दाग्नौ सुतरामुदराणि तु ।
अपथ्ये मलिनश्चान्नैः जायन्ते मल संचयात् ॥

अर्थात् शरीर में जितने भी रोग होते है सबके उदर (पेट) में मन्दाग्नि के कारण होते हैं और इस मन्दाग्नि का कारण अपथ्य एवं मलिन या दूषित अन्न का सेवन करना है जो मल रूप में बडी अन्त्र में संचित (एकत्रित) होता रहता है। वह विजातीय पदार्थ तुल्य मल बृहन्त्र में रुकना ही मलावरोध कहा जाता है। स्वाभा-विक क्रिया का रूप यह होता है कि समय पर भूख लगती हैं, भोजन करने पर पाचक होकर चौबीस घण्टे में एक बार प्रातः या दो बार भोजन करने से प्रातः सायं दो बार मल प्रवृत्ति होकर खुलकर मल निकल जाता है और चित्त प्रफुल्लित हो जाता है।

आज के युग में खाद्य,अखाद्य वस्तुओं की भरमार एवं मात्रा प्रकृति के नियम पालन मे अवहेलना एक अभिशाप बनकर न केवल भारत देश में ही अपितु संसार के प्रायः हर भाग में जहां

जहां अप्राकृतिक परम्परा का व्यापार चल रहा है यह दुरुह रोग अपना विकट मुंह बाए खडा दिखाई पड रहा है। यदि आज यह कहा जाय कि हम लोगों में शुद्ध स्वस्थ पुरुष विरले ही दिखाई देते हैं। अधिकांश लोग इस दुष्ट पिशाच रोग के चंगल में ग्रसित दिखाई देते हैं तो यह अतिशयोक्ति नहीं कही जा सकती है। ६० से ८० प्रतिशत लोग तो भारत के प्रमुख नगरों में आये दिन रेचनकी गोली खाकर ही मलविसर्जन कर सन्तोष कर लेते हैं। अन्धाधुन्ध रेचक औषधि-सेवन कर यह रोग दिन पर दिन कठिन ही नही कठीनतम बनता जाता हैं।

जो लोग आलसी बैठे रहते है। चलना फिरना व्यायाम द्वारा शारीरिक कार्य नाम मात्र को भी नहीं करते। सदैव चटपटे मसालेदार या तले भूने एवं घृत, तैल द्वारा मिश्रित पके पकवान्न खोआ, रबडी, खरचन एवं इसी प्रकार जीवन तत्त्वो को नष्ट कर आहार पदार्थ सेवन करने वाले, चाय, कहवा, भांग, मदिरा आदि मादक पेयों का सेवन करने वाले, बिना भूख भोजन और बिना प्यास केवल लिप्सा में लिये गये ठण्डे, गरम पेय एवं पदार्थों के खाने वाले तथा हर प्रकृति व्यापार में अपनी शक्ति के अन्तर्गत अपने आपको समझने की धृष्टता का साहस करने वाले सदा सर्वदा इस भयानक रोग का शिकार होते है। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं कही जा सकती है। अधिक मिष्टान्न एवं अधिक पौष्टिक औषधियों का सेवन भी इस रोग के सहायक साथी हैं। इस वास्तविकता से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है।

—०—

अजीर्ण नाशक उपाय

निम्न लिखित चित्र में यह बताया गया है कि किसी पदार्थ के अधिक या अनियमित सेवन से अजीर्ण हो जाये तो डाक्टर, वैद्य की सहायता के बिना ही घर की साधारण वस्तुओं से वह कैसे ठीक हो सकता है।

अखरोट का – अनार दाना से, अंजीर का – बादाम से, अंगूर का – गुलकन्द या सौफ से, अमरुद का - सोंठ और सौंफ से, अरवी का – खटाई या दालचीनी से, आम का – दूध की लस्सी से, आलू का – गरम मसाला या सोडा से, अनार का–हरड या नमक से, अरहर का – खटाई या घी से, आंवला का-सोडा, सोंफ या बादाम रोगन से,

इमली का – बनफशा से, उडद का – सोंठ, हींग. काली मिर्च शहद या अदरक से,

कचालू का – खटाई या दालचीनी से, काशीफल का – गरम मसाला से,

कमलगट्टा का - बादाम रोगन से, केले का - नमक, सोंठ या मधु से

खजूर का - छाछ से, खरबूजे का – निम्बू या मधु से

खीरे का अजवायन या नमक से, खीर का - मूंग या सोडा से

खुम्ब का - गरम मसाला से, खुरमानी का खांड या निम्बू जल से

खोआ का - नमक, निंबू या सोडा से, गन्ने का - अदरक या अर्क अजवायन से

गेहूं का - सोडा या सोंफ से, गाजर का – गुड से

गुडका, राब का – खटाई से, गोभी का अदरक या गरम म ाले से
घी का -- गरम पानी या निम्बू से, घिया का - सौंठ, अदरक या अनारदाना से

दाख का - निम्बू की शिकंजबीन या खीरेसे, दही का - सोंठ नमक या जीरा से

चाय का सौंफ या दूध से, चावल का – नमक या काली मिर्च से
चने का – अजवायन से, चिलगोजे का – खटाई से

–o–

महर्षि दयानन्द जी महाराज द्वारा राजा राव तेजसिंह को लिखे चौंतीस औषध के योग

सर्पोषधि (सांप काटे की दवा) :-

जमालघोटे की गिरी को नींबू के रस में दिन-रात भिगोय फिर एक दिन-रात सुखावें । इस रीति से २१ 'इक्कीस' पुट अर्थात् बयालीस दिन-रात में करके रख लें । जब किसी को सांप काटे तब पत्थर पर घिस के जिस जगह काटा हो लगा दें । यदि मूर्छित हो गया हो तो सलाई से थोडा आंख के ऊपर लगा दें और त्रिफला के जल को उपस्थित (पास में) रखें । वैसे कई दिन धोवें, त्रिफला को रात्रि के समय मिट्टी के पात्र में भिगोवें और कण्ठ तक ठण्डा जल पिलाकर दो चार बार कै (उल्टी) करावे, तो सर्प के विष से बच जावे ।

द्वितीय औषधि -

जिस समय किसी को सांप काटे उसको तुरन्त ही एक रीठा कुछ पानी में घिसकर पिलाना चाहिये, उसी समय विष उतर जावेगा ।

तथा तृतीय -

नींब गिलोय को वांटकर पीवे, यदि मूर्च्छा आगई हो तो जहां तक पिचकारी से नींब गिलोय को पेट में पहुंचावे तो बच जावे.

४. गोहेरे के विष की दवा –

दोनामखा पैसे भर पानी में पीसकर पिला दें। यदि मूछित हो जाये तो पिचकारी से पेट में पहुंचा दें तो अच्छा हो जाये।

५. बाला (नाहरवा) की दवा –

छः मासे आक का दूध और बारह माशे गुड, दोनों को मिलाकर टिकिया सी बनाकर बाले पर दो या तीन बार लगा दें तो अच्छा हो जाये।

६. पागल कुत्ते की दवा –

सफेद तिल का तैल और आक का दूध बराबर काटे हुए स्थान पर लगाये, ठीक हो जायेगा।

७, द्वितीय औषधि –

पुराना घृत धतूरे के बीज और आक का दूध अथवा घृत आक का दूध और गुड इनको जल में पीसकर घाव में लगा देने से अच्छा हो जाता है।

८. वीर्य पुष्ट होने की दवा –

सूखे आंवले को कूट छान उसके बराबर मिश्री मिलाकर गौ के दूध के साथ प्रातः सायं एक–एक प्रयोग करने से प्रमेह ठीक हो जाये।

९. पेट दर्द की दवा –

सोंठ, सुहागा, हींग इनको समान मात्रा में लेकर सहजने की छाल में घोटकर दो माशे की गोली बना लेवें। एक गोली गर्म जल से देवें तो पेट का दर्द समाप्त हो जाये

१०, खून साफ करने की दवा –

फिटकरी को भूनकर एक माशा या जितनी पचे पाव भर छाछ (लस्सी) मट्ठा या जितनी रुचि हो उतनी में मिलाकर पीवे तो हर तरह की खून खराबी ठीक हो जाये तथा खांसी व बवासीर आदि में लाभ होवे।

११. मूत्रकृच्छ्र और पथरी की औषधि (अपरीक्षित) –

एक लाल मिरच मीठा छास में आठ पहर भिजोकर निकाल लेवे फिर उस छाछ को फेंक और दूसरी छाछ में पीसकर जितनी छाछ पीने की इच्छा हो उतनी में छानकर पीवे, इसी प्रकार दूसरे दिन दो मिरची और तीसरे दिन तीन, ऐसे सात दिन तक चढ़ना उतरता जाय। इस समय खट्टा, गुड, तैल और नोन को न खाय तो मूत्रकृच्छ और पथरी रोग छूट जाय।

१२. गर्भस्राव की सम्भावित दवा –

दूब जड समेत एक पैसे भर अर्थात् एक तोला भर, ११ काली मिर्च इनको पीस छानकर ७ दिन गर्भाधान से पहले ७ दिन चौथे मास भी पीवे तो गर्भ स्रवित न हो।

१३. काली फुंसी की दवा –

काली फुंसी पर सोने की शलाका का चारों ओर दाह (दाग) देवें तो वह अच्छी हो जावे।

१४. गर्भ स्थिर करने की दवा

शंखावली को दूध में पकाकर जब दूध ठण्डा हो जावे तब स्त्री को पिलावें तथा गर्भ स्थापन के समय स्त्री को शंखावली पीसकर सुंघावे तो गर्भ स्थिर हो जाय।

१५. जो सुजाक से सुजाक हो जाता है उसकी परीक्षित दवा –

सुदर्शन के पत्तों का अर्क निकालकर उसकी पिचकारी भर-कर लगावें और पत्तों को पीसकर घाव पर लगा देवें तो सात रोज में व्रण सूख जावे। यदि उसी के पत्ते को छः माशे मिश्री के साथ खायें तो इक्कीस दिन मे सुजाक ठीक हो जावे तथा फिर कभी न होवे।

१६. दूसरा योग –

नींबू की आधी फांक में फिटकडी बारीक पीसकर चावल के दाने तोल के बराबर भरकर ओस में रख दें तथा ७ दिन तक खाली पेट चूसें तो सुजाक जाता रहे।

१७. धातु–प्रमेह (लकोरिया) की दवा –

बबूल की फली ७ तोले, बडा गोखरु एक तोला, कोंच के बीज कीं गिरी १ तोला, सतावर का चूर्ण एक तोला, नागौरी असगन्ध १ तोला इन सबका कपडछान बना लें। बराबर की खांड मिला लें। दवा तैयार हैं।

प्रयोग–पुरुषों के लिए ६ माशे चूर्ण प्रातः सायं दूध से लेवें।

स्त्रियों के लिए धान की खील दोले, पाव पानी पतीलो में डालकर खील समेत उबाल लें खीर बन जायेगी ६ माशे ६ माशे चूर्ण आधी खीर से प्रातः खाली पेट लैवे। ६ माशे सायंकाल आधी खीर से लेवे।

परहेज–खटाई, कच्चा मीठा, तली हुई वस्तु न खावे तथा संयम से रहें।

१८. वीर्य पुष्ट की दवा –

गुल खैर के फूल को पीस शहद मिलाकर पानी मे छान ठण्डाई बनाकर (इकतालीस दिन तक सेवन करें तो वीर्य पुष्ट हो जावे।

१९. रक्त विकार की औषधि –

दो पैसे भर मेंहदी और मधु मिला पीस के खावे और यत्न से भोजन ऐसी चीजों का न करे कि जिनसे रुधिर न बढ़े, तथा चने की रोटी अरहर की दाल चावल आदि खावे और सेवन करे तो रक्तविकार जाय।

२०. उन्माद की दवा –

दो माशे मुलहटी को शहद में मिलाकर ७ दिन खायें, दाल चावल कढ़ी का प्रयोग करें तो उन्माद ठीक हो।

२१. उपदंश की दवा –

आवले दूध या शहद के साथ १ तोला नित्य प्रयोग करे तो रोग ठीक हो।

२२. जीर्ण ज्वर की दवा –

खूब कलां १ तोला आधा किलो पानी में भिगों दें। प्रातः-काल मिश्री मिलाकर शर्बत बनाकर पीवें। परहेज - घी न खावें। बादाम रोगन खाये। बासे सायंकाल के रखे हुये पानी से स्नान करें तो २१ दिन में ज्वर समाप्त हो।

२३ शक्ति बढाने की दवा –

एक सेर प्याज के छोटे-छोटे टुकडे करके बर्तन में शहद के साथ भिगो दें। गड्ढा खोदकर १५ दिन तक भूमि में गाड दें फिर निकाल कर एक तोला नित्य प्रति खावें तो शक्तिशाली होवें।

२४. जमींकन्द बनाने की रीति –

सेर भर जमींकन्द को शुद्ध करके आध पाव अदरक के साथ उबाल मसाले डाल शाक बना लें।

२५. पेट में शूल की दवा –

अदरक का रस, प्याज का रस, शहद १-१ तोला लेकर आपस में मिलाकर दिन में तीन बार लेवें तो पेड का शूल ठीक होवे।

२६. पसली के दर्द की औषध –

पुराना महुवा पाव पर पानी में कूट कपडे में बांध दो घडी के पश्चात् पुनः उसी की रोटी बनाके ४ प्रहर बन्धा रहने दें तो पसली की पीडा जाय।

२७. तथा–सांभर का सींग घिसकर पसली पर लगा के कंडे से सेक करे तो पसली का दर्द जाता रहे।

२८. आंखों का सुरमा --

सुरमे की डली को नीम के वृक्ष में गड्ढा साकरके रख दें तथा ऊपर से आटा लगाकर सुराख बन्द कर दें। २१ दिन रहने दें फिर निकालकर भंगरे के रस में छोटी इलायची डाल खूब पीस लें उसको सुरमे की तरह नेत्रों में लगायें तो पुरानी दुखती आंखें ठीक हो जायें।

२९. दांतों का मंजन –

मौलसरी की छाल पीसकर मंजन करें तथा अपामार्ग (चिरचिटा) की दातुन करें या चूर्ण बनाकर मंजन करें तो दांत न हिलें.

३०. दूसरा योग –

माजू फल, मुलहटी, सफेद कत्था, रूमी मस्तगी, नीला थोथा ये पांचों चीजें बराबर लें। नीले थोथे को अंगारों पर खीलकर लोहे की कडाही में थोडा सा डालकर बूझा लेवें। पुनः पांचों को पीस और इनके बराबर आक की जड की छाल लेकर छःवों चीजे लोहे की कडाही मे लोहे के मुसल से पीसे। जब अंजन के बराबर

महीन हो जावे तब शीशी मे रख ले। दातुन करते समय अच्छी प्रकार दांतों पर मलकर कुछ ठहरकर कुल्ला करे, दांतों के समस्त रोग ठीक होकर दांत सुदृढ हो जाते हैं।

३१, काले बाल करने वाला तेल –

पलाश (ढाक) के वृक्ष के नीचे जो बीच की जड हो उसे मूसला कहते है। उसके नीचे गड्ढा खोद कर आधी जड काट नीचे खाली जगह मे एक वर्तन कली किया हुआ रख दें। ऊपर से ढक्कन लगा इस प्रमाण छेद बीच मे रहने दें जिस्से मूसले की जड बीच मे ठीक बैठ जाये। फिर उसे चारों तरफ से मिट्टी से ढक दे। तथा कण्डों को वृक्ष के चारों तरफ लगा कर आग लगा दे। जितना अर्क उस पात्र मे निकल आबे उतना हो सरसों का तेल मिलाकर कढाही मे औटावे। जब तेल आधा रह जावे तब कडाही को उतारकर उस मे माजूफल १ माशा, लोहे का रेतन १ तोला, १ माशा नौला थोथा इन सब चीजों को पीसकर तेल में मिलाकर शोशी भरकर रख दे। दवा तैयार हैं।

प्रयोग–रात को सोते समय इस तेल को बालों मे लगाकर ऊपर से पान के पत्ते बांधकर सो जाये तो प्रात:काल तक बाल काले हो जाये।

३२. तृतीयक ज्वर की दवा –

६ मांशे फिटकरी गर्म जल से लेवें। जब दूसरी बार बुखार आने का समय हो उससे पहले दवा लें तथा समय उस समय तक भोजन न करे बुखार नहीं आयेगा।

३३. दाद की दवा –

गन्धक, राई, राल, कच्चा तेलिया, सुहागा ये सभी चीजे बराबर लेकर पृथक्-पृथक पीसकर आपस मे मिलाकर ३६ घन्टे

खरल करके एक अंग करलें। बेर के समान गोली करके सुखा लें।

प्रयोग–एक गोली को चिकने साफ पत्थर पर पानी में घिस-कर दाद को खुजलाकर लगावें तो दाद जड से जाता रहे।

३४. बिच्छू काटे की दवा –

बारीक पिसा हुआ नमक अंगुली के अगले भाग पर पानी लगा उस पर नमक लगाकर हल्के हल्के हाथ से बिच्छू काटे स्थान पर मलें। इस प्रकार तब तक करे जब तक दर्द बन्द न हो। डंक जगह थोडा सा नमक लगाकर चिपका दें तो बिच्छू का दर्द जाता रहे।

–०–

औषध संग्रह

सिर दर्द और जुकाम के लिये –

आप एक अम्बरी सेब २०० ग्राम का लें। उसमें १६ मोगी खंदुई से बना लो। अब आप १६ टोपो वाले लोंग लेकर सेब का सुराखों मे लगा दो और किसी कली वाले बर्तन में एक हफता रख दो आठवें दिन लोंग उतार लें और एक लोंग सुबह और एक शाम को गर्म दूध से खायें। सिर दर्द और जुकाम ठीक होगा।

२. आधे सिर दर्द के लिये – एक तोला काली मिर्च चबाकर खाओं और ऊपर से ढाई तोले घी पीओ।

३. मुंह की बदबू के लिये-जीरे को भुनकर खाईये।

४. शहद की मक्खी या कीडे के काटने पर सोंठ का लेप कीजिये।

५. सोजस के लिये काली जीरी का लेप कीजिये।

६. हरे आंवले का रस आधा किलो, तिलों का तेल आधा कि० दोनों की पकाकर लगाने से बढते हैं।

७. छोटी छोटी फुन्सियों पर जामुन की गिटक को घिसकर लगाने से आराम होता है।

८. छपाकी के लिये – नीम्बू के तेल मुश्क कपूर मिलाकर मालिश करने से ठीक हो जाता है।

९. गर्भ सूख जाये – मुलहठी का चूर्ण समान चीनी मिला–

कर खाने के बाद ऊपर से दूध पीने से गर्भ हरा हो जाता है ।

१०. पुरानी खांसी – बांसे के पत्तों का चूर्ण दो माशे शहद के साथ खाने से पुरानी खांसी दूर हो जाती है ।

११. सोजन का रोग – इटसिट का साग बनाकर बिना नमक खाने से सोजन दूर हो जाती है ।

१२. जिनके पेशाब में शक्कर आती हैं, वह हररोज थोडी देर दौड करे तो शक्कर की शिकायत नहीं होगी ।

१३. टट्टी करते वक्त ऊपर नीचे वाले दांतों को दबाकर बैठने से दांत मजबूत होंगे ।

१४. सिर की सिकरी के लिये – अरहर की दाल नीम्बू के रस में पीसकर सिर धोने से सिकरी नहीं रहती ।

१५. पेट दर्द – सूखा पोदीन लेकर चीनी मिलाकर खाने से पेट दर्द ठीक हो जाता है ।

१६. सफेद प्रदर होनेपर- सफेद फटकडी कच्ची पीसकर दो माशे पानी में डालकर रोज योनि को पिचकाडी से धोना चाहिए ।

१७. प्रदर– (लिकोरिया) के लिये सिमलेक फल १०० ग्राम लेकर उसे सुखा लो और बीज समेत पीसकर रख लो और समान मिश्री मिलाकर एक२ तोला सुबह शाम गाय के ताजे दूध से सेवन कीजिये ।

१८. निमोनिया के लिए--फटकडी फूल की हुई और अभ्रक भस्म दो दो रत्ती शहद में मिलाकर देने से आराम होगा ।

१९. अतिसार (दस्त या मरोड) के लिए–फूल फटकडी दो रत्ती, अफीम एक रत्ती मिलाकर देनें से दस्त ठीक हो जायेंगे ।

२०. पथरी के लिये – मूली की राख गर्म पानी के साथ खाने से ठीक हो जाती है ।

२१. बढे हुए जिगर के लिये – मूली के बीजों को पीसकर खाने से आराम होता है ।

२२. फुन्सी के लिये – हल्दी को तवे पर गर्म करके पानी में मिलाकर फुन्सी पर लगाने से फुन्सी फूट जाती है ।

२३. चोट और जख्मों के लिए – चूना, हल्दी दोनों को समान भाग लेकर लगाने से आराम होता है।

२४. गठिया रोग–बिनौले (वणेवे) का तेल मलने से गठिया रोग दूर होता है ।

२५. कछडाली या दूसरे फोडे – जीयेपोते का लेप लगाने से दूर होते हैं।

२६ प्रमेह के लिए–ताजी गिलोय का ५० ग्राम रस निकाल कर एक समय पीने से सभी तरह के प्रमेह दूर होते हैं ।

२७. पसलियों का दर्द - अकडे के दूध में काले तिल पीसकर लेप करने से पसलियों का दर्द ठीक होता है ।

२८. भिलावे का जहर - मक्खन में तिल मिलाकर खाने से जहर दूर होता है ।

२९. मौसमी बुखार - चार पत्ते तुलसी और काली मिर्च रोज खाने से मौसमी बुखार दूर होता है ।

३० छाती का दर्द – बारासिंगे की भस्म एक माशा एक तोला शहद के साथ खाने से छाती का दर्द ठीक होता है ।

३१. सिर का दर्द – जायफल को दूध में घिसकर लेप करने से सिर दर्द दूर होगा ।

३२. नीम के कोमल पत्ते रोज दस–पन्द्रह खाने से खून की सभी बीमारियां दूर होंगी ।

३३. शरीर की सुस्ती–तेल में जायफर जलाकर तेल मलने से सुस्ती दूर होती है.

३४. शक्ति के लिये – सौफ खाने से हाजमें की शक्ति बढती है ।

३५. नीन्द के लिये–आजवायन खानी चाहिये ।

३६. जाडे का बुखार–मक्कों की जड कानों से बांधने पर आराम होता है ।

३७. क्रिमि रोग–चम्बे के पत्तों का रस दो तोले और थोडा सा शहद डालकर पीने से ठीक होता है ।

३८. छाइयां–पुठकन्डे के पत्तों के रस में मूली के बीज पीसकर लेप लगाने से मुंह के धब्बे दूर होते हैं ।

३९. पुरानी खांसी–शलगम के रस में शहद मिलाकर पीने से खांसी दूर हो जाती है ।

४०. खांसी के लिये – तुलसी के पत्तों का रस शहद में मिलाकर पीने से ठीक हो जाती है ।

४१. खांसी और दमे के लिये–कंडियारी का रस गर्म करके शहद मिलाकर पीने से ठीक हो जाता है ।

४२. खांसी - बच के टुकडे को मुंह में रखकर रस चूसने से खांसी दूर हो जाती है ।

४३. शीतला के दागों के लिये - कत्थे और हल्दी को समान भाग लेकर चूर्ण लगाने से फायदा होता है ।

४४. मुंह के छाले - कीकर के पत्ते पीसकर लगाने से मुंह

छाले दूर हो जाते हैं।

४५ गला खराब होने पर-एक गंठी लहसुन को पीसकर और उसका रस निकालकर गले को मलने से गला ठीक हो जाता है।

४६. गले के बन्द होने पर-शहद और चूना मिलाकर लगाने से ठीक हो जाता है।

४७. बलगम आने पर-मुलहटी का काढा पिओ।

४८. जोडों का दर्द-नींबू के रस में जौखार और शहद मिला कर पीने से फायदा होता है।

४९. सिर की सिकरी–५० ग्राम नींबू का रस सात दिन सिर में लगाने पर सिकरी नही रहती।

५०. गठिया के लिये – तेल में लहसुन (धोम) डालकर जलाकर और उसको पीने से गठिया रोग ठीक हो जाता है।

५१. हाथ पांव के मुडने पर–राई और नमक का लेप करना करना चाहिये।

५२. जिगर की गर्मी के लिये-अनार का रस पीना चाहिये.

५३. तिल्ली के बढ जाने से - मूली के पत्तों समेत कूटकर उसका रस निकाल कर रख लो। १० तोले मूली के रस में एक माशा निसादर मिलाकर पीवो। आठ दिन सेवन करने पर प्रत्येक पुरानी तिल्ली ठीक होगी।

५४. पेट के चमुण - नीम का तेल बच्चे के पखाने की जगह पर लगाने से मर जायेंगे।

५५. छींक आना - नाक को नमक वाले गर्म पानी से साफ करके कदु रोगन डालो।

—०—

दाद की औषधियां

१. पमाड के बीज, तिल, सरसों, कूठ, बावची और दोनों हल्दी समान भाग लेकर गाय के छाछ में पीसे और दाद पर लेप करें तो खुजली युक्त दाद विर्चचिका सौ वर्ष का पुराना भी नष्ट हो जाता है

२. संहजने की जड की छाल पानी में पीसकर लेप करने से दाद का नाश हो जाता हैं।

३. चकवड के बीज ' मूली के रस ' में पीसकर लेप करने से दाद नष्ट हो जाता हैं।

४. अमलतास के पत्ते छाछ में पीसकर लेप करने से दाद नष्ट होता हैं।

५. कन्नेर के पत्ते छाछ या मट्ठा में पीसकर लेप करने से दाद-खाज नष्ट होता है।

६. आमला सागर गन्धक, रूमी, शिंगरफ और सफेदा काशगरी सबको समान - समान पीस छान लो फिर इसे गाय के घृत में मिलाकर लगाओं इससे दाद व खुजली आदि चर्म रोग नष्ट हो जाते है।

७. राल, गन्धक, सुहागा, खुरासानी अजवायन-सब समान भाग पीसकर रख छोडे। जब लगाना हो तब नीबू के रस में घोट-कर लगाये दाद नष्ट हो जायेगा।

८. सुहागा दो तोले, नौसादार एक तोला और कलमीशोरा छः माशे इन्हें महीन पीसकर पानी में घोलकर शीशी में भर दो।

दाद पर फोहे से लगादो, यह बहुत तेज लगता है।

९. मूली के पके पत्तों को नित्य नियम पूर्वक दाद पर रगड़ना लाभकारी है।

१०. कच्चे पपीता का रस दाद पर लगाने से भी दाद दूर होता है।

११. इमली के बीज नीबू के रस में पीसकर लगाने से दाद नष्ट होता है।

१२. कली चूना, ५ भाग, पीली सरसों का तैल १५ भाग। तैल को खरल में रखकर ऊपर से चूना डाल दें और तीन चार घंटे तक खरल करें। भली भांति एक में मिल जाने पर डिब्बे में रखलें इससे दाद नष्ट हो जाता है।

१३. गेंदे का रस निकालकर लगाने से दाद नष्ट हो जाता है।

१४. पुराना दाद जो अच्छा न होता हो तो उसे कपडे से रगकर उस पर आक का (मदार) दूध लगाये। इससे कष्ट होता है पर दाद सदा के लिये दूर हो जायेगा।

१५. ढाक के बीजों की गिरी को पानी में लेप करने से दाद दूर हो जाता है।

१६. हारसिंगार की पत्तियों को पीसकर दाद पर लगाने से लाभ होता है।

१७. सुहागे का फूला ५ तोला, मिश्री १तोला, राल १तोला रेवन्दचीनी १ तोला, गन्धक नैनियां ३ तोला, कबीला १ तोला, कासगरी सफेदा १ तोला शिगरफ १ तोला, भूना तूतिया ६ माशा, काली मिर्च १ तोला सबको मिलाकर खरल करें। इसके लगाने से दाद नष्ट होता है।

१८. गन्धक २।। तोला, हरताल २। तोला दोनों को २० तोला सरसों के तैल में डालकर कढाई पर चढाकर अग्नि पर रखो जब तेल खूब धुंआ देने लगे उतारकर रखलो। इस तेल की मालिश करो और दाद चम्बल पर भी लगाओं।

१९. पुराना गुड थोडा सा लेकर उसे हाथ से दबाकर नमक कर लो और टिकली सी बनाकर दाद पर चिपका दो। थोडी देर में उखाडकर फिर चिपका दो ऐसा कई बार करो। तीन घंटे पश्चात् पुनः इसी तरह करो। ऐसा करने से दाद के सम्पूर्ण रेशे निकल आयेंगे। इसके बाद 'अंजीर' के दूध का लेप कर दे दाद एक ही दिन में नष्ट हो जायेगा।

२०. लहसुन की राख करके शहद में मिला लो और दाद पर लगा दो दाद ठीक होगा।

२१. मैनफल को पानी में पीसकर दिन में दो तीन समय दाद पर लेप करते रहने से दाद का नाश हो जायेगा।

२२. सरेस को दाद पर लेप कर दें और उसे दाद के स्थान पर तब तक लगा रहने दें, जब तक दाद ठीक न हो जाय। इससे दाद जाता रहेगा।

—०—

दीर्घ जीवन की कला

एक विद्वान् ने कहा है –

" पृथिवी पर सब से उत्तम पदार्थ स्वास्थ है बुद्धिमानों का कहना है कि स्वास्थ्य ही धन है । एक धनी यदि रोगी है, तो धन और एश्वर्य होते हुये भी गरीब है और गरीब कुली अगर उसका स्वास्थ्य ठीक है तो वह सचमुच अमीर है । "

अच्छे स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिये विश्व के अनेक विद्वानों ने जो परीक्षण तथा प्रयोग किये हैं उनके आधार पर प्राप्त अनुभवों के सारांश में यहां प्रस्तुत किया जा रहा है जिन्हे यदि हम अपने जीवन में अपना लें तो निश्चय ही हम अपने प्राचीन ऋषि मुनियों विद्वानों की शत या इससे अधिक वर्ष तक जीवित रहने की कल्पना को साकार रुप प्रदान कर सकते है । उनका कहना है –

१. शरीर को उचित भोजन तथा पानी दो ।

२. शरीर को जितना अधिक हो सके स्वच्छ एवं ताजी हवा तथा धूप की रोशनी में रखो ।

३. चरबी बढाने वाले भोजन से परहेज रखो ।

४. हरी साग सब्जी तथा फलों का सेवन करो ।

५. प्रातः जल्दी उठकर नित्य शुद्ध वायु में कम से कम दो घण्टे टहलो ।

६. स्त्री पुरुष सभी आवश्यकतानुसार नित्य व्यायाम करें

७. शरीर के अन्दर से मल, मूत्र, पसीना आदि विकारों का विसर्जन करो।

८. शरीर को ज्यादा ठण्ड व गर्मी से बचाओ।

९. शरीर से पर्याप्त काम लो, व्यायाम कराओ तथा आराम भी दो।

१०. शरीर के हर अंग (जैसे–चमडा, हड्डी, मांस, रक्त, वीर्य इत्यादि) की पूरी पूरी सुरक्षा करो।

११. भोजन खूब चबा–चबाकर करो। शाम के खाने में दूध तथा दूध से बने पदार्थों का सेवन अवश्य करो।

१२. शरीर में बाहर से बीमारी के कीडे न आने दो।

१३. मिलों में पिसे हुये अन्नों से परहेज करो।

१४. प्यास लगने पर थोडा–थोडा दूध पीने पर वृद्ध भी युवा सा अनुभव करने लगता है।

१५. अधिक खाना मत खाओ। कब्ज मत होने दो।

सोते समय गुन गुना दूध या जल पिओ तथा प्रातः उठकर शीतल जल अवश्य लो।

१७. गरम मसाले, मिर्च, चाय, तम्बाकू और मादक द्रव्यों जैसे–शराब, भांग, गांजा, चरस आदि से दूर रहो।

१८. डाक्टरों तथा दवाइयों से दूर रहने की चेष्टा करो। मांस न खाओ क्योंकि इससे मनुष्य की प्राणशक्ति घटती है।

१९. विश्राम का अर्थ है शरीर में जंग लगाना। परिश्रम को भार मत समझो। श्रम पूजा है।

२०. हर हालत में चिन्तामुक्त एवं प्रसन्न रहो, क्योंकि

बेफिक्री और अलमस्ती दीर्घ जीवन की कुंजी है।

अन्तु किसी विद्वान् का यह कथन है – "मेरा शरीर वह मन्दिर है जिसमें मैं विराजमान हू इसलिये मैं अपने शरीर की बाहरी और भीतरी स्वच्छता पर पूरा ध्यान दूंगा. मैं अधिकतर सूर्य के प्रकाश में रहूंगा व स्वच्छ वायु का सेवन करुंगा मैं शरीर से खूब काम लूंगा व उसे आराम भी करने दूंगा। मैं शरीर को अपने मर्यादा के प्रतिकूल कोई भी काम नहीं करने दूंगा। मैं अपने भाइयों की शरीर रक्षा में सदैव निस्वार्थ भाव से दत्तचित्त रहूंगा।"

हमें प्रतिज्ञा रूप में ये स्वीकार करना चाहिये और दीर्घ जीवन की कला को ग्रहण करना चाहिये।

–०–

सफल चिकित्सक

यदि चिकित्सक को एक सफल चिकित्सक बनना हो तो चार पांच बातों का ध्यान अवश्य करना होता है, वे ये हैं –

प्रथम यह है कि उसे प्रत्येक रोग के कारण (निदान) लक्ष्य साध्यासाध्यवस्थाओं का किताबी ज्ञान तो होना आवश्यक ही है, फिर भी योग्य चिकित्सक गुरु से भी रोगी का क्रियात्मक प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

दूसरी आवश्यक बात यह है कि चिकित्सक को मानव शरीर के प्रत्येक अंगों की रचना के साथ-साथ उन अंगो की क्रिया विज्ञान आधुनिक एवं आयुर्वेद मतानुसार ज्ञान होना परमावश्यक इस लिये है कि उन-उन अंगों की विकृतावस्था में होने वाले रोगों के लक्षणों का ज्ञान उनकी क्रिया शैली के अनुसार अत्यधिक विस्तार से होना चाहिये। ताकि रोगी के द्वारा बताये जाने वाले लक्षणों के आधार पर सफल चिकित्सक यह अनुमान ठीक-ठीक लगा सके कि ऐसे लक्षण किस अंग के विकृत होने से हो सकते है, और अपने सटीक् निर्णय के अनुसार वह उसकी चि० सफलता पूर्वक कर सके।

तीसरी बात जो और भी ज्यादा प्रमुख है. वह यह है कि औषधियों का ज्ञान, निर्मित औषधि में पडने वाले घटको के पृथक् पृथक गुणों का एवं आयुर्वेदिक और एलोपैथी की दवाओं, योगों का द्रव्य गुणात्मक ज्ञान, उसकी मात्रा, रोग की विशेष अवस्थाओं में उनके सही और उचित रूप में योग करने की विशेष विधि का

ज्ञान होना भी आवश्यक है, यह तभी सम्भव होना होना है जब
चिकित्सक अपने खाली अवकाश के समय ऐसी पुस्तकों, पत्रिकाओं
निर्माताओं द्वारा समय-समय पर प्रकाशित होने वाली पुस्तिकाओं
का अध्ययन निरन्तर करता रहता है ।

चौथी महत्त्वपूर्ण बात यह रह जाती है कि चिकित्सा समय
चिकित्सक को जहां एक ओर रोगी की जान बचाने का प्रयास
करना पडता है वहां दो मुख्य बातों का ध्यान रखना होता है, प्रथम
यह कि रोगी की आर्थिक दशा को देखकर उसके सामर्थ्यानुसार
सुलभ सस्ती महंगी जैसा अवसर हो, औषधि का प्रयोग अधिक उप-
युक्त होता है । एक साधारण आय वाले रोगी के लिये ज्यादा बहु-
मूल्य औषधियों की व्यवस्था करने जब चिकित्सक बैठता है । उसे
यह भी ध्यान में रखना पडता है कि इस बहुमूल्य औषधि की अपेक्षा
यदि दूसरी सस्ती कम मूल्य की औषधि से काम चल सके तो अवश्य
ही निर्धन रोगी को हम हर प्रकार का आर्थिक सहारा भी देते है
और चिकित्सा भी यथासंभव अनुभव पूर्ण होती है ।

अब अन्तिम बात चिकित्सा शैली की आती है । आयुर्वेद के
प्रेमी वैद्य यही चाहते हैं कि जहां तक हो आयुर्वेद उपचार से ही
रोगी को रोग दूर किया जाय. परन्तु कभी कभी ऐसी अवस्था भी
सामने आती है जब अन्य पैथियों की शरण लेनी पडती है और जब
रोगी के प्राण बचाने का सवाल सामने आता है, तो जिससे भी लाभ
हो, उसकी जान बचे, चिकित्सक को अपने अनुभव के आधार पर
उस पैथी की औषधि का प्रयोग निःसंकोच करने से पीछे नहीं
हटना चाहिये । हां यह जरूर है कि अधिकांश रूप में जहां तक हो
सके आयुर्वेदिक औषधियो का जिन पर हमें पूर्ण रूप से अनुभव है
उन्हें अवश्य ही शास्त्रानुसार मात्रा,काल इत्यादि के अनुसार करना
चाहिये ।

—०—

पो. र. : एम. एच. एन. ओ. २०८७

यह निर्विवाद है कि आयुर्वेद चिकित्सा प्राचीन होते हुए भी आधुनिक चिकित्साओंकी तुलना में सर्वश्रेष्ठ है। लेखक ने इस कृति में आयुर्वेद विषयक अनेक पहलुओं को संक्षिप्त एवं सारगर्भित रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें विभिन्न रोगों पर अनेक उपचारात्मक योग दिए हैं। जिसे सर्व साधारण जनता सहजता से समझकर निश्चित रूप से लाभान्वित हो सकेगी। इस पुस्तक का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार हो यही मेरी हार्दिक इच्छा.

— पं. उत्तममुनि वानप्रस्थी

संरक्षक : म. आ. प्र. सभा